श्री स्वामी रामतीर्थ.

और

स्वामी नारायण



लखनऊ १६०१

भूमिका

यह संक्षिप्त जीवनी जो पं० चन्द्रिकाप्रसाद गुप्त ने बड़े उत्साह से लिखी है, इसे श्रीरामतीर्थ ग्रन्थावली में इसलिये स्थान दिया गया है कि जो सविस्तर जीवनी श्री मन्नारायण स्वामी जी ने पहले उर्दू भाषा में प्रकाशित की थी, उसका यह हूबहू फोटो है; लेखक की शैली लिखने की ऐसी मनोहर और आकर्षक है कि पाठक यह नहीं भाँप सकता कि यह जीवनी किसी अन्य भाषा में से उद्धृत है या नवीन है। जब से हिन्दी ग्रन्थावली प्रकाशित हुई है उसमें उर्दू भाषा के लेखों का अनुवाद इसी पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद जी की लेखनी से ही प्रकाशित हुआ था, इस लिये इस अनुवाद के कार्य्य ने इनमें न केवल राम के प्रति भक्ति का ही प्रवाह जारी कर दिया था बल्कि लेखनी की शैली भी राम की लेखनी वत् बना दी थी जिससे यह जीवनी मानो राम के हाथ ही से लिखी प्रतीत होती है। दूसरे, श्रीमन्नारायण स्वामीजी की आज्ञा से ही लेखक ने इसके लिखने का उत्साह किया था, और जिसे पढ़कर न केवल स्वामी जी का ही चित्त कृत-कृत्य हुआ है बल्कि जो भी इसे प्रेम की दृष्टि से पढ़ेगा स्वामी जी महाराज के चित्त की दाद देगा।

अन्य सज्जन भी यदि इसी प्रकार राम के प्रेम में निमग्न हो कर कोई लेख स्वामी राम तथा उनके उद्देश्यों के सम्बन्ध में भेजेंगे, तो लीग सहर्ष उनको ग्रन्थावली में स्थान देगी। ईश्वर करे राम-प्रेमियों के चित्त रामोपदेश को पढ़ते पढ़ते ऐसे ही प्रफुल्लित और प्रवाह पूर्ण होते रहें।

मन्त्री

निवेदन ॥

परमहंस स्वामी रामतीर्थ जी महाराज की यह संक्षिप्त जीवनी लेखक की कम्पित लेखनी से एक-नई नवेली हिन्दी की माधुरी-पत्रिका में प्रकाशित कराने के विचार से लिखी गई थी, किन्तु कुछ स्वार्थ-वासनायें बीच में आजाने से इसके छपने में एक झगड़े की सम्भावना देखकर तीन महीने बाद, उसके श्रद्धेय सम्पादक से, यत्न के साथ, इस की कापियाँ ले ली गईं और वंद्यचरण श्रीमन्नारायण स्वामी जी महाराज ने इसे इस रूप में छपाकर हिन्दी पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर दिया।

इस पवित्र जीवनी के लिखने में मेरा कोई कर्तृत्व नहीं, सब श्रीमन्नारायण स्वामीजी महाराज की बनाई हुई बातें और उन्हीं का दिया हुआ मसाला है। मैं ने उसे श्रद्धा-सहित अध्ययन करके संक्षेप में, अपनी भाषा में, लिख भर दिया है। इस लिये यदि इस पुस्तिका के पाठ से पाठकों को कुछ आनंद मिले, तो वे राम-बादशाह के पवित्र जीवन और श्रीमन्नारायण स्वामी के प्रसाद का फल समझें और यदि इसमें कुछ त्रुटि हो, तो मेरा निज का दोष समझें और मुझे मूढ़मति जान क्षमा करें।

६६६ सआदतगंज रोड,
लखनऊ, १४-१-२३

चन्द्रिकाप्रसाद गुप्त।



परमहंस स्वामी रामतीर्थजी

Lives of all remind us
We can make our life sublime.
(Longfellow)

जन्म और बाल लीला

विश्व-विदित, ब्रह्मलीन, आत्म-दर्शी परमहंस स्वामी रामतीर्थ जी महाराज एम० ए० का जन्म पंजाब प्रान्त के अन्तर्गत, गुजरांवाला-ज़िले में, मुरारीवाला-गाँव के एक गोस्वामी वंश (गोसाईं वंश) में, मिती कार्तिक शुक्ला १, बुधवार सं० १९३० वि० तदनुसार ता० २२ औक्टोबर, सन् १८७३ ई० को हुआ था। कहते हैं, यह गोसाईं-वंश वही वंश है जिसके पुरातन पूर्वज, सूर्य-वंशी क्षत्रियों के कुल-पुरोहित, ब्रह्मर्षि वशिष्ठ जी महाराज थे; और, इस कलि-काल में भी, जिस वंश में, हिन्दी-साहित्य-गगन के पूर्ण चन्द्र, रामचरित-मानस के रचयिता, महात्मा गोसाईं तुलसीदास जी ने प्रकट होकर अपनी कालांतकारिणी कीर्ति-कौमुदी का संप्रसार किया है। हमारे चरितनायक का गृहस्थाश्रम का नाम गोसाईं तीर्थराम था।

तीर्थराम जी के पिता गोसाईं हीरानन्द जी थे। आप एक सीधे-सादे, साधारण स्थिति परन्तु क्रोधी-प्रकृति के पुरुष थे और ब्रह्म-वृत्ति············द्वारा अपना निर्वाह करते

थे। उस समय कौन कह सकता था कि गोसाईं हीरानंद जी एक ऐसा पुत्र रत्न उत्पन्न करेंगे जो अपनी विद्या, बुद्धि, अलौकिक प्रतिभा, असाधारण अध्यवसाय एवं त्याग और उत्साहपूर्ण अल्पकालिक जीवन से सारे संसार को मोहित कर लेगा—अपने ज्ञान के प्रकाश से विचारवान् धर्मात्मा पुरुषों की दृष्टि में बिजली वत् चमककर उनके हृदयोंमें एक दिव्य अलौकिक जीवन की ज्योति जगा जायगा।

अपने ज्योतिर्विद् पाठकोंकी विशेष जानकारी के लिए, यहाँपर चरितनायकका जन्मपत्र दे देना अप्रसंगिक न होगा—

श्रीमद्विक्रमादित्यराज्यतो गताब्दः १९३० शालिहनव शाके १७९५ दक्षिणायने शरदृतौ मासानामुत्तमे मासे कार्त्तिक मासे शुभे शुक्लपक्षे तिथौ प्रतिपदायाँ बुधवासरे २५ घड़ी ५५ पल स्वाती नक्षत्रे ३१ घड़ी २५ पल प्रीतियोगे २६ घड़ी ४६ पल बवकरणे एवं पंचांगे श्रीसूर्योदयादिष्टम् २४ घड़ी ४८ पल तत्समये मीनलग्नोदये श्रीगोस्वामि रामलालात्मज श्रीगोस्वामि हीरानन्द गृहे पुत्रो जातः। स्वाती नक्षत्रस्य चतुर्थचरणे जातत्वाद् राशिनाम ताराचंद्रः।

अथ जन्मलग्नम्।



तीर्थराम के जन्म पर ज्योतिषियों ने अनेक भविष्य-वाणियाँ की थीं, किन्तु संक्षेपानुरोध से उनका यहाँ सविस्तार उल्लेख नहीं किया गया। केवल एक ज्योतिषी की वाणी का ही उल्लेख कर दिया है। इस ज्योतिषी ने इस जन्म लग्न पर निम्नलिखित १० फल वर्णन किए हैं:-"(१) अति विद्वान् हो, (२) २१ या २२ वर्ष की आयु में परमार्थ का ख्याल बहुत अधिक हो (३) इष्ट अद्भुत हो जैसे ओंकार (४) विदेश अवश्य जावे (५) राजदरबार में चमत्कार होकर रहे नहीं (६) शरीर रोगी रहे बल्कि किसी अङ्ग में दोष हो (७) अन्तिम आयु में विषय वासना नितान्त नष्ट (८) दो पुत्र अवश्य हों (९) आयु २८ से ३५ वर्ष के भीतर २ अर्थात् अल्पायु हो (१०) यदि ब्राह्मण हो तो मृत्यु जल में और यदि क्षत्रिय वंश से हो तो मृत्यु मकान पर से गिरकर हो।"

अस्तु। हमारे तीर्थराम जी अभी केवल ९ मास के ही थे कि उनकी माता का देहान्त होगया जिससे उनके पालन पोषण का भार उनकी ज्येष्ठा भगिनी श्रीमती तीर्थदेवी तथा उनके पिता की भगिनी पर पड़ा। अत्यन्त शैशव-काल (बचपन) में ही मां का दूध छूट जाने और ऊपर का—गाय आदि का—दूध मिलने से बालक तीर्थराम अत्यन्त कृशांग और कमज़ोर रहते थे; किन्तु बड़े होने पर, युवा अवस्था में पाँव रखते ही, जैसे वे आत्मिक उन्नति में सबसे ऊंची छलांग मार गए, वैसेही उन्होंने अपनी शारीरिक शक्ति का भी आदर्श * विकाश किया। अपने संन्यास-समय में तो

* आजकल शारीरिक बल और स्वस्थ शरीर के समझने में बड़ी भ्रांति फैली हुई है। लोग साधारणतया माल खा-खाकर खाली देह फुला लेने वालों अथवा डंड-कसरत करके डँड-बल्ले तैयार कर लेने वाले 'अखाड़े

नित्य तीस-तीस मील दुर्गम पर्वतीय मार्गों में चलना उनके लिए बच्चों का खेल-सा होगया और हिमानी–मंडित अत्यंत शीतल शैल-शिखरों के निकट केवल एक धोती पहन कर जीवन-यापन करना एक साधारण बात होगई ! उन्होंने अमरनाथ और यमुनोत्री आदि यात्रायें केवल एक धोती पहने हुए कीं ।

तीर्थराम की बुआ–हीरानन्द की बहन अत्यन्त धर्म-प्रायणा और प्रेम की पुतली थीं । उनका सारा समय भजन पूजन और व्रत उपवास आदि धर्म-कृत्यों में ही व्यतीत होता था । वे नित्य ग्राम के देव-मंदिरों में दर्शन करने जाती और आरती में सम्मिलित होती थीं । जहाँ कहीं कथा-वार्त्ता होती, उसे वे बड़ी श्रद्धा के साथ सुनती थीं । वे जहां जातीं, अपने साथ बालक तीर्थराम को भी ले जाती थीं । इस प्रकार अत्यन्त शिशुपन से ही तीर्थराम की होनहार आत्मा पर धर्म की छाप पड़ने लगी ।

गोसाईं हीरानन्द का कथन है कि तीर्थराम जब केवल तीन वर्ष के थे, तो एक दिन वह उन्हें अपने साथ लेकर धर्मशाला में कथा सुनने गए । जब तक वह कथा सुनते रहे, बालक तीर्थराम टकटकी लगाकर कथा कहने वाले पण्डित की ओर देखते रहे । दूसरे दिन फिर जब कथा की

के पहलवानों' को ही स्वस्थ और बलावान् समझ लेते हैं, जो ज़रा ज़रा सी सर्दी गरमी और काम-क्रोध मिलते ही बीमार हो जाते हैं । वास्तव में ये लोग दूषित मल-मांस-पूर्ण और रोगी हैं । स्वस्थ और शक्तिमान् वे ही पुरुष हैं जो सुडौल, सधे हुए शरीर के, कष्ट-सहिष्णु और अक्लांत परिश्रम-शील हैं ।

शंख-ध्वनि हुई, तो तीर्थराम ने रोना आरम्भ कर दिया। गोसाईं हीरानन्द ने बच्चे को बहलाने के अनेक प्रयत्न किए; पर सब निष्फल हुए। अन्त को जब वे उसे गोद लेकर धर्मशाले की ओर चलने लगे, तो वह बिल्कुल चुप होगया। पिता पुत्र को चुप हुआ जान ज़रा ठिठके और चाहा कि उसे घर छोड़ जायँ, किन्तु ऐसा करते ही बालक ने रोना आरम्भ कर दिया, और जब वे उसे लेकर फिर कथा की ओर बढ़ने लगे, तो उसने रोना बन्द करदिया। उस दिनसे नित्य कथा का शँखनाद होते ही तीर्थराम रोना आरम्भ करते और कथा-मन्दिर में पहुँचते ही उनका रोना बन्द हो जाता।

तीर्थराम अभी दो वर्ष के भी न होने पाए थे कि उनके पिता ने उनकी सगाई गुजराँवाले ज़िले की तहसील वज़ीराबाद के वेरोके ग्राम में पण्डित रामचन्द्र के यहाँ कर दी। उस स्थान में पण्डित रामचन्द्र का वंश प्रतिष्ठित समझा जाता है। इसी वंश के एक वृद्ध पं० मुसद्दीलाल थे, जिनके पिता सिक्खों की अमलदारी में, वज़ीराबाद में, मुहासिब थे। आगे चलकर जब तीर्थराम की आयु लगभग १० वर्ष के हुई, उनका व्याह भी कर दिया गया। भला इस छोटी सी आयु में बच्चा इस गोरखधन्धे को क्या जान सकता था। कहते हैं, थोड़ा और बड़े होने पर जब तीर्थरामजी ने होश संभाला, तो एक दिन वे अपने पिता से बोले कि "आपने मुझे किस छोटी आयु मे ही इस जंजाल में फँसा दिया।" किन्तु इस बाल-व्याह से हिन्दू-घरानों की जो दयाजनक दुर्गति है, उसके अनुसार ऐसी बातों की कौन परवाह करता है।

शिक्षा

अस्तु । तीर्थराम जब ५½ वर्ष के हुये, तो मुरारीवाला ग्राम की वर्नाक्युलर प्रायमरी पाठशाला में पढ़ने बिठाए गए । तीर्थराम यद्यपि छोटे डील के और सीधे-साधे थे, परन्तु उनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी-पढ़ने में सबसे प्रवीण और परिश्रमी थे । मदरस्सेके मुख्य अध्यापक मौलवी मोहम्मद्अली थे । वह तीर्थराम की प्रखर प्रतिभा और अद्भुत धारण-शक्ति से बड़े विस्मित होते थे । तीर्थराम जी ने तीन ही वर्ष में पाठशाले की पाँचों श्रेणियां पढ़कर परीक्षा में प्रथम श्रेणी का प्रमाण पत्र प्राप्त किया और छात्रवृत्ति के साथ ही अपने मौलवी साहब से फ़ारसी की गुलिस्ताँ बोस्ताँ भी पढ़लीं । तीर्थराम की स्मरण शक्ति इतनी प्रबल थी कि पंचम श्रेणी की उर्दू-रीडर की कुल नज्में (कवितायें) उन्होंने कंठाग्र करली थीं । कहते हैं तीर्थराम जब मौलवी साहब के निकट अपनी शिक्षा समाप्त कर चुके, तो अपने पिता से कहने लगे-"पिताजी ! मदरस्से के मौलवी साहब ने मेरे साथ बड़ा परिश्रम किया है, मैं चाहता हूं कि हमारे घर में जो भैंस है, वह मौलवी साहब को गुरुदक्षिणा में भेंट की जाय !" अहा ! नव-दस वर्ष के बालक को यह कर्तव्य-ज्ञान !! सच है, 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात ।

आरंभिक शिक्षा समाप्त करने के अनंतर अंगरेज़ी पढ़ने के लिये तीर्थरामजी अपने पिताके साथ गुजराँवाला हाई-स्कूल में भरती होने गए । यह नगर मुरारीवाला गाँव से

लगभग ७ मील के अंतर पर है। इस दस वर्ष की छोटी आयु में बच्चे को बिना किसी संरक्षक के घर से, इतनी दूर अकेला छोड़ना उचित न समझकर उनके पिताजी उन्हें अपने एक सुयोग्य कृपालु मित्र भगत धन्नारामजी*के पास, उनकी संरक्षकता में छोड़ गए। नियमानुसार तीर्थराम ने गुजराँवाला हाई स्कूल में, स्पेशल क्लास में, भरती होकर दो वर्ष में मिडिल और दो वर्ष में इन्ट्रेन्स की भी परीक्षा दे दी। इंट्रेन्स की परीक्षा के समय उनकी आयु १४½ वर्ष की थी और परीक्षा में उनका नंबर पंजाब में ३८वाँ रहा।

हाई स्कूल की शिक्षा समाप्त करके उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके लिये हमारे तीर्थरामजी लाहौर जाने लगे। पिताजी उन्हें आगे पढ़ाना नहीं चाहते थे। इसलिये तीर्थरामजी बिना उनकी सहायता की आशा किए, केवल भगवान् के भरोसे, घर से रूठ कर लाहौर चले गए और वहाँ मिशन कालेज के फ़र्स्ट ईयर में भरती हो गए। इस समय वे केवल अपनी उस छात्र-वृत्ति पर जो उन्हें गुजराँवाला की म्युनिसिपलटी से मिलती थी, अपना निर्वाह करते थे और

---

*भगत धन्नारामजी एक बाल-ब्रह्मचारी साधु हैं। आप जाति के अरोड़ा (मनोचे) हैं। आपका जन्म सं० १९०० विक्रमी में हुआ था। आपके पिता का नाम जवाहिरलाल था। आपकी माता शिशुपन में ही मर गई थीं। इससे आप अपनी दादी के हाथों पले। भगतजी बचपन ही से करामाती थे। आपकी शिक्षा साधारण देसी थी। आपको लड़कपन में कुश्ती का बड़ा शौक़ था और आगे को चलकर आप इस विद्या में बड़े निपुण हो गए। एक बार आपने एक अपने से दूने पहलवान को कुश्ती में दे मारा। मकतब की शिक्षा के बाद आप ठठेरी का धंधा करने लगे। और उसमें शीघ्र निपुण हो गए। अपनी १९ वर्ष की आयु में आप एकबार कटासराज तीर्थ के मेले पर गए। वहाँ आपने अनेक साधुओं के दर्शन किए।

अपने मौसिया (मासड़) पण्डित रघुनाथमल डाक्टर तथा अपने गुरु भगत् धन्नाराम की सहायता और प्रोत्साहन से शिक्षा लाभ करते रहे।

एफ़० ए० के द्वितीय वर्ष में घोर परिश्रम करने के कारण हमारे तीर्थरामजी प्रायः रोगी (बीमार) रहने लगे। इसपर भी उन्हें एकांत-सेवन और परिश्रम करने का इतना

आपको बहुत ही भाया। आपने वहाँ एक बर्तनों की दुकान कर ली। वहाँ आप जो पैदा करते, सब साधु संतों को खिला देते। आपनें वहाँ कुछ हठ योग की साधना की और उसमें आप दृढ़ साधक बने। आपको कथा वार्ता और सत्संग का बड़ा शौक़ था और जब कभी भक्ति और प्रेम का प्रसङ्ग आता, तो आपके लोचनों में जल भर जाता। इसी फ़ट्टासराज में आप कुछ शेर व सख़ुन भी कहने लगे। आपकी शेरें (कवितायें) बड़ी चुटीली होती थीं। एक बार आपने योग वशिष्ठ की कथा बड़े ध्यान से सुनी, तब से आपमें अद्वैत ब्रह्म ज्ञान का भाव भर गया। आप सबको ईश्वर या ब्रह्म कहने लगे। अब भी भगतजी के परिचित लोग उन्हें ईश्वर (रब व ख़ुदा) ही कहते हैं। जब आपमें इस ब्रह्मभाव की जिज्ञासा बढ़ी, तो आप फिर गुजराँवाला चले आए। यहाँ आपको कई महात्माओं के दर्शन हुए, जिनसे आपने समाधि लगाना सीख लिया। लेकिन शीघ्रही आप एकांत-अभ्यास के लिये जङ्गलों में चले गए। वहाँ आपको अनहद-शब्द का अभ्यास होगया। मन-वाणी पर सिद्धी मिली। आपका शापाशीर्वाद फलने लगा। आप जङ्गलों से लौटकर फिर गुजराँवाला में रहने लगे और वहां आपकी अच्छी ख्याति होगई। इन्हीं दिनों आपको तीर्थराम सौंपे गए। तीर्थराम पर आपका ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे आपको केवल अपना गुरु ही नहीं वरन् ईश्वर का प्रत्यक्ष अवतार मानने लगे। तीर्थरामजी ने अपने विद्यार्थि जीवन में कोई ११०० पत्र अपने गुरु भगत धनाराम के पास भेजे। इनमें कोई २०० पत्र श्रीमन्नारायण स्वामी ने राममंत्र के नाम से छापे हैं। भगतजी आज भी जीवित हैं। गुजरांवाला में, पुरानी मंडी में रहते हैं। लगभग ८० की आयु होते हुए भी आप ख़ूब चलते-फिरते और आजकल के नवयुवकों से कहीं अधिक शक्तिमान हैं।

चाव था कि उन्होंने अपने एक पत्र में अपने मौसिया जी को लिखा था कि—

"मेरी सबसे भारी ज़रूरत (महान् आवश्यकता) (१) एकांत स्थान और (२) समय है। हे परमात्मन्! (१) परिश्रमी मन, (२) एकान्त स्थान और (३) समय, इन तीनों वस्तुओं का कभी मेरे लिये अकाल न हो। मौसिया जी! यही मेरा संकल्प है। आगे परमेश्वर मालिक है।"

ईश्वर से इन प्रार्थनाओं का हमारे तीर्थराम जी को यह फल मिला कि निरन्तर रोग-ग्रसित रहने पर भी वे सन् १८९० ई० को एफ़० ए० की परीक्षा में अपने कालेज में सर्व-प्रथम रहे और सरकारी छात्रवृत्ति भी प्राप्त करने के साथ ही उसी कालेज में अपनी बी० ए० की शिक्षा भी जारी रक्खी।

इस प्रकार शिक्षा बराबर जारी रखने से जब उन के पिता जी को यह निश्चय होगया कि तीर्थराम हमसे सहायता लिये बिना भी अपनी शिक्षा जारी रख सकता है और हमारी इच्छानुसार नौकरी आदि करने को तैयार नहीं होता, तो क्रोध में आकर वे तीर्थराम जी की युवती स्त्री को भी, उनके पास, लाहौर में, छोड़ गए और स्वयं किसी तरह की भी सहायता करने को तैयार न हुए। इस समय नवयुवक तीर्थरामजी को बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। घर का किराया, किताबों और फ़ीस का बोझ, अपना और स्त्री का खर्च; सब कैसे पूरा हो। किन्तु सच है, दृढ़ संकल्प धीर पुरुष कठिनाइयों के पर्वत को चूर्ण कर देता है, निराशा के सघन घन को छिन्न-भिन्न कर देता है।

एकबार छात्रवृत्ति के रुपए गोसाईं जी ने क़िताबों में खर्च कर दिए और अन्य खर्चों के लिए उस समय ध्यान न रहा; किन्तु बाद में बड़े सङ्कट में पड़ गए। हिसाब लगाने से मालूम हुवा कि इस महीने में उनके हिस्से में केवल तीन पैसे रोज़ बचते हैं। पहले तो घबराए, फिर सँभलकर बोले "भगवान् हमारी परीक्षा करना चाहते हैं, कुछ चिन्ता नहीं; भिक्षुक भी तो दो तीन पैसे में दिन काटते हैं।" अतः गोसाईं जी दो पैसे की सवेरे और एक पैसे की संध्या को रोटी खाकर दिन काटने लगे। किन्तु एक दिन जब संध्या को रोटी खाने दुकान में गए तो दूकानदार ने कहा—"तुम रोज़ एक पैसे की रोटी के साथ दाल मुफ्त में खाजाते हो। जाओ, मैं एक पैसे की रोटी नहीं बेचता।" यह दशा देखकर नवयुवक तीर्थराम जीने मनमें संकल्प कर लिया कि "चलो, जबतक और रुपया नहीं मिलता, २४ घण्टों में एक ही समय भोजन किया जायगा।"

लेख-विस्तार-भय से हम यहाँ तीर्थरामजी के उन पत्रों को उद्धृत करने से विरत होते हैं जिनसे इस दरिद्रता और संकटके समय भी उनके हृदय की परिश्रम-शीलता, गुरु-भक्ति और ईश्वर-विश्वास का ज्वलंत परिचय मिलता; तथापि हम यहाँ उनके १६ जुलाई १८९० के, उस लंबे पत्र में से जिसे उन्हों ने अपने ईश्वर-तुल्य गुरु भगत धन्नाराम जी के पास भेजा था, परिश्रम के संबंध की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर देने के लोभ को संवरण नहीं कर सकते। तीर्थरामजी लिखते हैं—

"दुनिया में कोई व्यक्ति होशियार हो ही नहीं सकता

जब तक वह मिहनत न करे । जो होशियार हैं, वे सब बड़ा परिश्रम करते हैं, तब चतुर हैं । यदि हमको उनका परिश्रम विदित न हो, तो वे गुप्तरूप से अवश्य करते होंगे, या वह" पहले कर चुके होंगे । यह बात बड़ी जँची हुई है । ....

"ज़िहन जिसको कहते हैं, वह भी मिहनत से बढ़ जाता है । येन-केन-प्रकारेण यदि कोई व्यक्ति बिना परिश्रम के परीक्षा में अच्छा रह भी जाय, तो उसको पढ़ने का स्वाद कदापि नहीं मिलेगा । वह मनुष्य बहुत बुरा है । वह उस मनुष्य-जैसा है जिसने आपसे एक बार कहा था कि मुझे एक कविता बना दो, मगर उसमें नाम मेरा रखना ।"

"मैं यह जानता हूँ कि मिहनत बड़ी अच्छी वस्तु है; मगर मैं मिहनत इस तरह पर नहीं करनेवाला हूँ कि बीमार हो जाऊँ ।.........परमात्मन् ! मेरा मन मिहनत में अधिक लगे । मैं निहायत दर्जे की मिहनत करूँ !"

गोसाईं तीर्थरामजी गणित में बड़े तीक्ष्ण थे और परिश्रमी भी प्रसिद्ध थे; किंतु उस वर्ष बी० ए० की परीक्षा न जाने किस ढंग से हुई कि श्रेणी के चतुर और सुयोग्य विद्यार्थी तो अनुत्तीर्ण रहे और अयोग्य निकम्मे उत्तीर्ण हो गए । हमारे गोसाईंजी भी केवल अँगरेज़ी के परचे में तीन नंबर कम मिलने से अनुत्तीर्ण कर दिए गए । इस बात से कालिज के प्रोफ़ैसर और प्रिंसिपल को भी बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने बहुत प्रयत्न किया कि गोसाईं जी के अँगरेजी के परचे दुबारा देखे जायँ, परंतु सब व्यर्थ हुआ । फिर क्या था, लगे अँगरेज़ी पत्रों में लेख-पर-लेख निकलने । युनि-

वर्सिटी के फेलो महाशयगण घबराए। परिणाम यह निकला कि भविष्य के लिये यह रूल पास किया गया कि जिन विद्यार्थियों के किसी विषय में नियत अंकों से ५ अंक कम हों या समस्त अंकों के जोड़ में से ५ अंक कम हों, तो वे विचाराधीन (Under Consideration) रक्खे जायँ और उनके परचे फिर जाँच किए जाँय। इस नियमसे यद्यपि अन्य विद्यार्थियों के लिये भविष्य में कुछ सुभीता हो गया, किंतु हमारे गोसाईंजी उस वर्ष बी० ए० में रह गए और दुबारा पढ़ने को विवश किए गए।

इस अचानक विपत्ति से गोसाईं जी के सुकोमल हृदय पर कठोर आघात लगा। उनकी छात्रवृत्ति भी बंद होगई। गोसाईंजी बहुत ही व्याकुल हुए। वे सोचने लगे, मेरी छात्रवृत्ति तो बंद होगई, अब यदि मैं अपनी शिक्षा जारी रक्खूं, तो साल-भर की फ़ीस, किताबों और भोजन आदि का व्यय, सब कहाँ से आवेगा। इसी आकुलावस्था में उन्होंने एक दिन अपने मौसिया जी को लिखा कि "यदि तीर्थराम अपनी इच्छानुसार शिक्षा न पाएगा, तो संभव है कि बहुत शीघ्र वह संसार से विदा होजाय"। जब किसी तरह उन्हें शांति न मिली, तो एक दिन एकांत-स्थान में, ईश्वर का ध्यान करके, नीचे-लिखे श्लोक का उच्चारण करते हुए फूट-फूट कर रोए—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

रोते-रोते नवयुवक तीर्थराम की आँखें लाल होगईं।

आँसुओं से कपड़े भीग गए। वे सैकड़ों प्रकार के करुणा-पूर्ण हृदय-वेधक वाक्यों का उच्चारण करते थे। अंत में ये ईश्वर से अत्यंत विगलित चित्त से, निम्न-लिखित प्रार्थना कविता रूप में करने लगे—

कुंदन के हम डले हैं जब चाहे तू गला ले;
बावर न हो तो हमको ले आज आज़मा ले।
जैसे तेरी खुशी हो सब नाच तू नचा ले;
सब छान-बीन करले हर तौर दिल जमा ले।
राज़ी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रज़ा है;
यां यों भी वाहवा है और वों भी वाहवा है।
या दिलसे अब खुश होकर कर हमको प्यार प्यारे;
ख़्वाह तेग़ खिंच ज़ालिम, टुकड़े उड़ा हमारे।
जीता रखे तू हमको या तनसे सिर उतारे;
अब राम तेरा आशिक कहता है यों पुकारे।
राज़ी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रज़ा है;
याँ यों भी वाह वा है और वों भी वाह वा है।

ध्रुवकी प्रार्थना जिन कानों से सुनी गई थी, प्रह्लाद की पुकार जिन कानों में पहुँची थी, द्रौपदी के करुण-क्रंदन ने जिन कर्ण-कुहरों में प्रवेश किया था, ग्राह-ग्रसित गज की गुहार जहाँ लगी थी, नवयुवक तीर्थराम का आर्त-नाद भी उन्हीं कानों में पहुँचा। भगवान् तो आज भी व्याघ्र बनने को तैयार हैं; किंतु, कमी है प्रह्लाद जैसे भक्तों की। दूसरे ही दिन कालेज के हलवाई, झंडूमल ने तीर्थरामजी से प्रार्थना की कि गोसाइंजी! साल-भर रोटी आप मेरे ही घर खालिया करें। उसने रहने के लिये अपना घर भी

दिया । कालेज के प्रोफ़ेसरों ने उन्हें ढाढस दिया और गणित के प्रोफ़ेसर श्रीयुत गिलबर्टसन साहब तो फ़ीस के रुपये अपनी तनख़्वाह से देने लगे । इसके अतिरिक्त गोसाईं जी को कई ट्यूशन भी मिलगए, जिससे उनकी बी ए० की शिक्षा सोत्साह होती रही ।

अबकी बार बी०ए० की परिक्षा में गोसाईंजी पंजाब में सबसे प्रथम रहे । इस परिक्षा के विषय में स्वामीजी ने अपने 'विश्वास' नामक व्याख्यान में कहा था—

"राम जब बी०ए० की परीक्षा देरहा था, तो परीक्षक ने गणित के पर्चे में १३ प्रश्न देकर ऊपर लिखदिया था कि इन १३ प्रश्नों में से कोई से ९ प्रश्न हल करो । राम के हृदय में विश्वास उमंगें कर रहा था, उसने उतने ही समय में जितने में कि अन्य विद्यार्थियों ने कठिनता से ३ या ४ प्रश्न हल किये होंगे, सब प्रश्नों को हल करके लिख दिया कि इन १३ प्रश्नों में से कोई से ९ प्रश्न जाँच लीजिए।" अस्तु ।

बी०ए० की परीक्षा में फ़र्स्ट डिवीजन में पास होने और युनिवर्सटी-भर में प्रथम रहने से गोसाईं तीर्थरामजी को एम्० ए० के लिये ६०) मासिक छात्र-वृत्ति मिलने लगी ।

मिशन कालेज में उन दिनों एम्० ए०-क्लास नहीं खुली थी, इस लिये बी०ए० पास करने के बाद एम्० ए० की पढ़ाई आरंभ करने के लिये गोसाईंजी मई सन् १८९३ ई० को गवर्नमेंट-कालेज में भरती हुए । इस समय गोसाईंजी की आयु १९½ वर्ष के लगभग थी । जिस वर्ष गोसाईंजी ने बी०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की, उस वर्ष पंजाब युनिवर्सिटी की ओर से दो सौ पौंड की छात्रवृत्ति देकर किसी विद्यार्थी को सिविल सर्विस की परीक्षा के लिये विलायत भेजना था । गवर्नमेंट कालेज के प्रिंसिपल मिस्टर बेल ने

जो उस समय स्थानापन्न रजिस्ट्रार थे और जो एक बार की अचानक भेंट से गोसाईं तीर्थराम के बड़े हितचिंतक बन गए थे, गोसाईंजी के लिये सिफ़ारिश की। किंतु गोसाईंजीकी अभिलाषातोधर्म-उपदेशक या अध्यापक बनने की थी, न कि सिविल-सर्विस-परीक्षा पास करके इक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिशनर बनने की, इस कारण वह छात्र-वृत्ति किसी अन्य विद्यार्थी को मिल गई।

एम्० ए० में पढ़ते-समय अपनी दिनचर्या के विषय में गोसाईं तीर्थराम ने अपने ता० ६ फ़रवरी सन् १८६४ ई० के पत्र में अपने गुरुजी को लिखा है—

"मैं आजकल ५ बजे सवेरे उठता हूँ और ७ बजे तक पढ़ता रहता हूँ। फिर दिशा आदि जाकर स्नान करता हूँ और व्यायाम करता हूँ। इसके पश्चात् पंडितजी की ओर जाता हूँ। मार्ग में पढ़ता रहता हूँ। वहाँ एक घंटे के बाद रोटी खाकर उनके साथ कालेज में जाता हूँ। कालेज से डेरे आते समय मार्ग में दूध पीता हूँ। डेरे (निवास-स्थान) पर कुछ मिनट ठहरकर नदी को जाता हूँ। वहाँ जाकर नदी-तट पर कोई आध घंटे के लगभग टहलता रहता हूँ। वहाँ से लौटते-समय नगर के चहुँ ओर बाग़ में फिरता हूँ। वहाँ से डेरे आकर कोठे पर टहलता रहता हूँ। इतने में अँधेरा हो जाता है। (किंतु यह स्मरण रहे, मैं चलते-फिरते पढ़ता बराबर रहता हूँ।) अँधेरा होने पर कसरत करता हूँ और लैम्प जलाकर ७ बजे तक पढ़ता हूँ। फिर रोटी खाने जाता हूँ और प्रेम (एक विद्यार्थी जिसको पढ़ाते थे) की ओर भी जाता हूँ। वहाँ से आकर कोई १०-१२ मिनट तक अपने घर के वले (मकान में लगी हुई लकड़ी) के साथ कसरत करता हूँ। फिर कोई साढ़े दस बजे तक पढ़ता हूँ और लेट जाता हूँ। मेरे अनुभव में आया है कि यदि हमारा पक्वाशय (मेदा) स्वस्थ-दशा में रहे, तो हमें अत्यंत आनंद, प्रफुल्लता, चित्त की एकाग्रता, परमेश्वर का स्मरण और अंतःशुद्धि प्राप्त होती है, बुद्धि और स्मरण-शक्ति अति तीक्ष्ण हो जाती है। पहले तो मैं खाता ही बहुत कम हूँ, दूसरे जो खाता हूँ उसे भली भाँति पचा लेता हूँ।"

इस समय गोसाईंजी का भोजन अत्यंत हलका और सतोगुणी होता था और आगे चलकर तो वह केवल दूध ही पर निर्वाह करने लगे थे। इस प्रकार के आहार से गोसाईंजी को आशातीत शक्ति प्राप्त हुई।

इन दिनों गोसाईं तीर्थरामजी प्राकृतिक दृश्यों के भी बड़े अनुरागी थे। और इन दृश्यों का चित्र वह जिस स्वाभाविकता से लिपि-बद्ध कर सकते थे, वह उनके पत्रोंसे प्रकट है। इस प्राकृतिक दृश्य के वर्णन में आप अपने गुरुजी महाराज को १० जुलाई, १८९२ के पत्र में लिखते हैं—

"यहाँ कल बड़ी वर्षा हुई थी। आज मैं कालेज से पढ़कर सैर करता हुआ डेरे आ रहा हूँ। इस वक्त बड़ा सुहाना समय है। जिधर देखता हूँ उधर जल नज़र आता है या सब्ज़ी। ठंडी-ठंडी पवन हृदय को बड़ी प्रिय लगती है। आकाश में बादल कभी सूर्य को छुपा लेते हैं, कभी प्रकट कर देते हैं। नाले-नालियों में पानी बड़े ज़ोर से बह रहा है। गोल बाग़ (लाहौर का बाग़) के वृक्ष फलों से भरपूर हैं, टहनियाँ झुककर पृथिवी से आ लगी हैं, यही प्रतीत होता है कि अनार, आड़ू, आम इत्यादि अभी गिरे कि गिरे। कबूतर, काक और चीलें बड़ी प्रसन्नता से हवा की सैर कर रहे हैं। वृक्षों पर पक्षी बड़े आनंद से गायन कर रहे हैं। भाँति-भाँति के पुष्प खिले हुए यही मालूम देते हैं कि मानो मेरी राह देखने के लिये आँखें खोले प्रतीक्षा में खड़े हैं। पृथ्वी पर हरियावल क्या है, सब्ज़ मखमल का बिछौना बिछा है। सरो और सफ़ेदा के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष अभी स्नान करके सूर्य की ओर ध्यान किए एक टाँग से खड़े हैं, मानो संध्या-उपासना में मग्न हैं। आकाश की नीलिमा और सफ़ेदी ने अजब बहार बनाई है। मेंढक बरसात की खुशियां मना रहे हैं। हरएक तरफ़ से ख़ुशी के नक़्क़ारे बज रहे हैं, मानो पृथ्वी आकाश का विवाह होनेवाला है जिसकी संतान कार्तिक और मगसर (मार्गशीर्ष) के सतोगुणी महीने होंगे। इस समय आप मुझे याद आते हैं। चूँकि मैं आपको यह सब चीज़ें दर्शा नहीं सकता, लिख देता हूँ। अब मैं डेरे आ पहुँचा हूँ।"

बी० ए० उत्तीर्ण करने के अनंतर गोसाईं तीर्थरामजी गणित-विद्या में अच्छी ख्याति पा चुके थे जिससे कई कालेजों के बी० ए० और एम्० ए० के विद्यार्थी उनसे गणित सीखने आया करते थे। एक अँगरेज़-विद्यार्थी को भी वे गणित पढ़ाते थे। अपने कालेज में नाम-मात्र को एक घंटे के लिये जाते थे, और अपना शेष समय मिशन-कालेज में एफ़्० ए० और बी० ए० के विद्यार्थियों को गणित पढ़ाने में व्यय करते थे। इसके अतिरिक्त अन्य प्रोफ़ेसरों के गणित के परचे भी उनके पास देखने के लिये आते थे। इन सब बातों से उनके पास इतना काम बढ़ गया कि वे दिन-रात काम में व्यतिव्यस्त रहते थे। इसके सिवा व्यय का भार भी उनपर इतना अधिक था कि छात्र-वृत्ति के साठ रुपयों में से एक पैसा भी न बचता था। परीक्षा के समय फ़ीस जमा करने को उनके पास कुछ न था। अपने मौसिया की सहायता लेकर वह एम्० ए० की परीक्षा में प्रविष्ट हुए और परीक्षा दी। एप्रिल, १८९५ में परिणाम निकला कि आप अत्यंत सफलता-पूर्वक एम्०ए०-परीक्षामें उत्तीर्ण हुए।

❋ कार्य-क्षेत्र ❋

एम्० ए० पास होने के पश्चात् गवर्नमेंट कालेज के प्रिंसिपल मिस्टर बेल (Bell) की सम्मति से एफ़्० ए० और बी० ए० के विद्यार्थियों को १०) या १५) मासिक लेकर गणित सिखाने के लिये, आपने मई सन् १८९५ में प्राइवेट श्रेणियाँ खोलीं। किंतु घोर परिश्रम के कारण स्वास्थ्य बिगड़ जाने से उन्हें स्वास्थ्य-रक्षा के लिये शीघ्र ही अपने गाँव मुरारीवाला जाना पड़ा। थोड़े दिनों बाद जब आप लाहौर आए,

तो आप सनातनधर्म-सभा के मंत्री चुने गए। इसी अवसर पर आपने ला० हंसराजजी की सहायता से दयानंद ऍंग्लो-वैदिक कालेज में ड्राइंग सीखी। तत्पश्चात् आप स्यालकोट अमरीकन मिशन हाई स्कूल में ७७) मासिक पर सेकंड मास्टर नियुक्त हुए। और कुछ ही दिन बाद उक्त हाई स्कूल के बोर्डिंग के सुपरिंटेंडेंट भी हो गए। केवल दो मास इस पद पर काम करने के पश्चात्, एप्रिल १८९६ में, गोसाईंजी मिशन कालेज लाहौर में गणित के प्रोफ़ेसर, और तदनंतर मई १८९६ में सीनियर प्रोफ़ेसर के पद पर आसीन हुए।

इन दिनों हमारे गोसाईंजी के हृदय में कृष्ण-भक्ति का स्रोत बड़े वेग से उमड़ रहा था। आपने गीता का विधिवत् अनुशीलन किया। त्याग आप में इस कोटि का था कि वेतन मिलते ही वह दीन-दुखियों में बँट जाता और घर के लिये कुछ न रहता, जिससे उनके पिता गोसाईं हीरानंदजी वेतन मिलने के समय स्वयं लाहौर आते और घर के खर्च के लिये आवश्यक द्रव्य ले जाते। इन दिनों हमारे प्रोफ़ेसर तीर्थरामजी के अजमेर, शिमला लाहौर, अमृतसर, पेशावर और स्यालकोट आदि स्थानों की सनातन-धर्म सभाओं में जो व्याख्यान होते थे, उनमें आप प्रेम और ईश्वर-भक्ति की स्रोतस्विनी में श्रोताओं को मग्न कर देते थे। व्याख्यान देते समय आपके अनुराग-पूर्ण नेत्रों से अविरल अश्रु-धारा प्रवाहित होती थी। लाहौर में "इश्क़-इलाही" पर आपका जो भाषण हुआ, उसमें प्रेम के आवेश में आप इतना रोए कि हिचकियाँ आने लगीं। पेशावर में आपकी जो "तृप्ति" विषय पर वक्तृता हुई, उसमें तो आप इतने विह्वल हुए कि

बहुत देर तक आपके मुँह से शब्द ही न निकल सका। ऐसे ही भाषणों को सुनकर श्रीमन्नारायण स्वामी का मन-मधुकर भी गोसाईंजी के पाद-पद्मों में लुभायमान हो गया।

इन्हीं दिनों द्वारका-मठ के अधीश्वर श्री १९०८ जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी महाराज लाहौर पधारे। लाहौर की सनातन धर्म-सभा की ओर से गोसाईंजी को उनकी सेवा का भार सौंपा गया। जगद्गुरुजी महाराज संस्कृत-भाषा के पूर्ण विद्वान् और वेदांत-शास्त्र के पारदर्शी थे। वे प्रायः उपनिषदों की कथा कहा करते थे और वेदांत-शास्त्र का उपदेश देते थे। उनके सत्संग से गोसाईंजी के पवित्र अंतःकरण पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनका भक्ति-विगलित चित्त ज्ञान की अग्नि में चमकने लगा। उनकी कृष्ण-दर्शन की लालसा आत्म-साक्षात्कार में परिणत हुई। गरमियों की छुट्टियों में प्रतिवर्ष मथुरा वृंदावन की यात्रा करने के स्थान में अब वे उत्तराखंड के निर्जन वन और एकांत गिरि-गुहा का निवास ढूँढने लगे। जगद्गुरुजी के उपदेश से अब गोसाईंजी गीता के साथ-साथ उपनिषदों, ब्रह्मसूत्रों और वेदांत-ग्रंथों का निरंतर अध्ययन करने लगे। अब वे आत्म-विचार, आत्म-चिंतन, एवं आत्म-ध्यान में निमग्न होने लगे। जब अपने इस विचार-परिवर्तन की सूचना उन्होंने अपने पूर्व गुरु भगत धन्नारामजी को दी, तो वे अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने अत्यंत उत्साह-वर्द्धक उत्तर दिया, क्योंकि भगतजी पहले ही से ब्रह्म-ज्ञान में अनुरक्त थे।

जिस मकान में गोसाईंजी रहते थे, उसमें एकांत-अभ्यास का स्थान न होने से उन्होंने उसे छोड़कर एक दूसरा मकान हरिचरण की पौड़ियों में ले लिया। इस मकान में पहुँच-

कर गोसाईंजी ने कितने ही काम किए। यहीं पर एक बार लोक-विख्यात स्वामी विवेकानंदजी भी अपने साथियों-सहित पधारे और गोसाईंजी का आतिथ्य ग्रहण किया; इसी मकान से गोसाईंजी ने उर्दू-भाषा में 'अलिफ़'-नाम का वेदांत की शिक्षा देनेवाला एक मासिक पत्रभी निकाला; इसी मकान से जब उनके मानस-सरोवर में निजानंद की लहरें वेग से हिलोरें लेने लगीं, तो वानप्रस्थ का जीवन व्यतीत करने के लिये वे स्त्री-पुत्रों-सहित वन-वासी हुए;इसी मकान पर, फ़रवरी १८९८ में, उन्होंने एक "अद्वैतामृत-वर्षिणी" नाम की सभा स्थापित की जिसमें प्रति बृहस्पतिवार को साधु-महात्मा और विवेकीजन एकत्रित होकर श्रवण-मनन-निदिध्यासन द्वारा निजानंद की प्राप्ति के लिये अपनी वृत्तियों को अंतर्मुखी करने का अभ्यास करते थे; इसी मकान में रहते-रहते जब निरंतर अभ्यास से निजानंद उमड़ने लगा और चित्त प्रतिदिन सांसारिक मोह-माया से मुड़ने लगा, तो उन्होंने भगवान् के आगे सदैव के लिये आत्म-समर्पण करके, अपने २५ ऑक्टोबर १८९७ ई० के पत्र में, अपने माता-पिता को लिख भेजा—

'मेरे परम पूज्य पिताजी महाराज ! चरण-वंदना ! आपके पुत्र तीर्थराम का शरीर तो अब बिक गया। बिक गया राम के आगे। उसका शरीर अपना नहीं रहा। आज दीपमाला को अपना शरीर हार दिया और महाराज को जीत लिया। आपको धन्यवाद हो। अब जिस वस्तु की आवश्यकता हो, मेरे मालिक से माँगो, वह तत्काल स्वयं देंगे या मुझसे भिजवा देंगे। पर एक बार निश्चय के साथ उनसे आप माँगो तो सही। उन्नीस-बीस दिन से मेरे सारे काम बड़ी निपुणता से अब वह आप करते

लग पड़े हैं, आपके भजा क्यों न करेंगे? घबराना ठीक नहीं। जैसी आज्ञा होगी वैसा बर्ताव में आता जायगा। महाराज ही हम गोसाइयों का धन हैं, अपने निज के सच्चे और अमूल्य धन को त्यागकर संसार की झूठी कौड़ियों के पीछे पड़ना हमको उचित नहीं। और उन कौड़ियों के न मिलने पर शोक करना तो बहुत ही बुरा है। अपने वास्तविक घर और संपत्ति का आनंद एक बार ले तो देखो।"

इसी मकान में ही श्रीमन्नारायण स्वामी (पूर्व आश्रम में नारायणदास) ने भी गोसाईं जी के सत्संग से तृप्त और मस्त होकर उनके आगे अपने को पूर्ण समर्पित किया था और तब से वह निरंतर उनके साथ रहते रहे, इत्यादि ।

एप्रिल, १८९८ को गोसाईं जी ने कटासराज-तीर्थ की यात्रा की। इन दिनों यहाँ बहुत बड़ा मेला होता है, जिसमें अनेक साधु-महात्मा और विद्वान्-योगिराज आते हैं। किंतु उन्नतमना गोसाईं जी इस मेले से प्रसन्न नहीं हुए, उन्होंने अपने गुरुजी को लिखा—"जो सुख एकांत-सेवन और निज धाम में है, वह कहीं भी नहीं।" इन्हीं दिनों गोसाईं जी का विद्यार्थियों के लाभ के लिये अँगरेज़ी में, गणित-विषय पर, एक विद्वत्ता-पूर्ण भाषण हुआ, जो बाद में "How to excel in Mathematics (गणित में कैसे उन्नति कर सकते हैं)" नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। यह गोसाईं जी की पहली रचना थी, जो मुद्रित हुई। यह पुस्तिका अब स्वामी रामतीर्थ के अँगरेज़ी लेक्चरों के चौथे खंड में, जो "In woods of God Realisation" के नाम से प्रकाशित हुए हैं, छपी है। लीग ने उसे अलग भी प्रकाशित किया है।

❋ वन-गमन और आत्म-साक्षात्कार ❋

सन् १८९८ की गरमी की छुट्टी में, एकांत-सेवन के विचार से, गोसाईंजी हरिद्वार से ऋषिकेश होते हुए तपोवन पधारे। ऋषिकेश से वन-गमन करते समय गोसाईंजी के पास जो कुछ पैसा-कौड़ी था सो सब उन्होंने साधु-महात्माओं की सेवा में अर्पण कर दिया था और आप अकेले कई उपनिषदों की पुस्तकें साथ लिए, ईश्वर के भरोसे, तपोवन चल दिए। यह तपोवन ऋषिकेश से ८ मील के अंतर पर आरंभ हो जाता है। इसमें एक ब्रह्मपुरी-मंदिर है जिस के निकट कल्लु-कल्लोलिनी गंगा अपने कलकल-नाद से प्रवाहमान हैं। यह स्थान गोसाईंजी को बहुत ही भाया और यहीं पर उन्होंने अपना आसन जमा दिया। कहते हैं, यहाँ पर गोसाईंजी ने अत्यंत एकाग्र-चित्त होकर आत्म-साक्षात्कार किया। इस स्थान पर निवास करके गोसाईं-जी ने अपनी आंतरिक अवस्था और आत्म-साक्षात्कार का जो मनोहर वर्णन, उर्दू में, "जलवए-कुहसार" (पार्वतीय दृश्य) के नाम से किया है, पाठकों के विनोदार्थ उसका आभास-मात्र यहाँ दिया जाता है। *

"गंगे! क्या वह तेरी ही छाती है जिसके दूध से ब्रह्म-विद्या पोषण पाती है? हिमालय! क्या वह तेरी ही गोद है जिसमें ब्रह्म-विद्या खेला करती है? नंगे सिर, नंगे पैर, नंगे शरीर, उपनिषदें हाथ में लिए, आत्म-साक्षात्कार की तरंग में दीवाना वार राम पहाड़ी जंगलों में, गंगा-किनारे फिर रहा है (और कह रहा है—)

* विस्तार-पूर्वक वर्णन के लिये ग्रंथावली का १८ वाँ भाग देखो।

बर्गे-हिना पै जाके लिखूँ दर्दे-दिल की बात ;
शायद कि रफ़्ता-रफ़्ता लगे दिलरुबा के हात ।

(पहाड़ की कंदरा से प्रतिध्वनि होती है, मानों पर्वत राम से अपनी सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं, राम की बात का हँकारा भरते हैं—)

इश्क़ का मन्सब लिखा जिस दिन मेरी तक़दीर में;
आह की नक़दी मिली सहरा मिला जागीर में ।"

भीषण प्रतिज्ञा

"बस, तख़्त या तख़्ता (अर्थात् राजसिंहासन या चिता) । माता-पिता ! तुम्हारा लड़का अब लौटकर नहीं जायगा । विद्यार्थी लोगो ! तुम्हारा विद्या-गुरु अब लौटकर नहीं जायगा । गृहिणी ! तुम्हारा नाता कब तक निभेगा ? बकरे की मा कब तक खैर मनाएगी ? राम या तो सब संबंधों से श्रेष्ठतर होगा, या तुम्हारी सब आशाओं के सिर पर एक सिरे से पानी फिर जायगा । या तो राम की आनंदघन तरंगों में सब धन-धाम निमग्न होगा, या राम का शरीर गंगा की तरंगों के समर्पण होगा—देह-दशा का अंत होगा । मरकर तो हरएक की हड्डियाँ गंगा में पड़ती हैं, किंतु यदि राम को आत्म-साक्षात्कार न हुआ—यदि शरीर-भाव की गंध शेष रह गई—तो राम की हड्डियाँ और मांस जीतेजी मछलियों की भेंट होंगे ।

चमक परवाना तेरा आया हूँ मैं ऐ शमए-नूर;
बात वह फिर छिड़ न जाए, यह तक़ाज़ा और है ।"

अत्यंत प्रयत्न करने पर भी जब गोसाईंजी को आत्म-साक्षात्कार न हुआ, तो एक दिन व्याकुल होकर उन्होंने अपना शरीर गंगा की धारा में बहा दिया । गंगा चढ़ाव पर थी, कलकल-ध्वनि करता हुआ जल अत्यंत वेग से बह रहा था । एक विशाल तरंग ने गोसाईंजी के शरीर का गाढ़ आलिंगन किया—अपने भीतर छिपा लिया, और अत्यंत वेग से बहाकर एक पहाड़ी चट्टान पर, जो

गंगा के भीतर थी, लिटा दिया। थोड़ी देर में जब पानी उतर गया; राम पहाड़ी पर उठ बैठे; और बोले—

"मैं क़ुश्तगाने-इश्क़ में 'सरदार' ही रहा;
सर भी जुदा किया, तो 'सरे-दार' ही रहा।
सुने-आशिक़, चे कार भी आयद;
न आयद गर हिनाए पाए दोस्त॥"

कहते हैं, राम को यहीं आत्म-साक्षात्कार हुआ और वह बोल उठे—

"आज़ादा-अम, आज़ादा अम; अज़ रंज दूर उफ़्तादा अम;
अज़ इशवए ज़ाले-जहाँ आज़ादा अम, बाला स्तम। १।
तनहा स्तम, तनहा स्तम, चेह तुलस्मात तनहा स्तम;
जुज़ मन न बाशद हेच शै, यकता स्तम, तनहा स्तम। २।
चूँ कार मरदुम मी कुनंद अज़ दस्तो-पा हरकत कुनंद;
बेकार मांदम, जाय हरकत हम मनम हर जा स्तम। ३।
अज़ ख़ुद चहा खेहँ अहम, गो! मन कुजा हरकत कुनम;
अज़ बहर चे कारे कुनम मन कुहे-मतलबहा स्तम। ४।
चेह् मुफ़्लिसम चेह् मुफ़्लिसम बा ख़ुद नमीदारम अज़े;
अज़ जवाहिर मिहर-ओ-ज़र जुमला मनम, यकता स्तम। ५।
दीवाना अम, दीवाना अम, बा अक़्लो-हुश बेगाना अम;
बेहूदा आलम मी कुनम ई करदमो मन कुना स्तम। ६।
नमरूद शुद मरदूद चूँ?—पहम निगह अहदद चूँ;
मारा तकब्बुर कै सज़द, चूँ किब्रिया हर जा स्तम। ७।
तालिब! मकुन सौहीने-मन, दर ख़ाना अत राम अस्त बीं;
कू ताक़ती अज़ मन ज़रा! दर क़लबे-तो पैदा स्तम। ८।

अर्थ—१-मैं मुक्त हूँ, मैं मुक्त हूँ; दुःख और शोक से दूर हूँ। जगत्-रूपी बुढ़िया की चटक-मटक से मुक्त हूँ—परे हूँ।

२. मैं अकेला हूँ, मैं अकेला हूँ, कैसा आश्चर्य है, मैं अकेला हूँ! मेरे सिवाय किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं है:—(मैं) एकमेवाद्वितीयम् हूँ, नितांत अकेला हूँ।

३. जब सब लोग काम करते हैं और हाथ-पैर का संचालन करते हैं,

तो मैं अक्रिय रहता हूँ, क्योंकि गति का निकेतन तो मैं हूँ—समस्त विश्व मुझ ही से गति-शील है।

४. मैं अपने से बाहर कहाँ जाऊँ? बतला, मैं कहाँ गति करूँ? और किसलिये कोई काम करूँ? क्योंकि समस्त प्रयोजनों का प्राणात्मा तो मैं ही हूँ।

५. क्या मैं निर्धन हूँ?—क्या मैं सचमुच निर्धन हूँ और अपने साथ एक यव का दाना भी नहीं रखता हूँ?—नहीं! तारे, रत्न, सुवर्ण और सूर्य सब मैं हूँ—एक मैं ही हूँ।

६. मैं उन्मत्त हूँ, मैं विक्षिप्त हूँ, बुद्धि और विवेक से कुछ संबंध ही नहीं रखता। मैं व्यर्थ ही विश्व को उत्पन्न करता हूँ, और उत्पन्न करते ही उससे न्यारा हो जाता हूँ।

७. नमरूद * क्यों तिरस्कृत (मरदूद) हुआ है—इसलिये कि उसकी दृष्टि परिच्छिन्न थी। मुझे ऐसा अहंकार कब शोभा देता है, जब कि मैं सर्वोपरि श्रेष्ठ (महान्) और सर्वत्र व्याप्त हूँ।

८. ऐ जिज्ञासु! मेरा अपमान मत कर। देख, तेरे घर में 'राम' समाया हुआ है। तू ने मुझसे मुँह क्यों मोड़ लिया? मैं तो तेरे हृदय में प्रकाशमान हूँ।"

---

* नमरूद शाम-देश का बादशाह था, जो अपने वैभव को सबसे बड़ा हुआ देखकर अपने को ईश्वर कहने लगा था। ईश्वर की इच्छा से उसके कान में एक मच्छड़ घुस गया और उसके मस्तिष्क में फड़कने लगा। हकीमों ने उपाय बताया कि कोई आपके सिर पर जूते लगाया करे, तो आपको चैन पड़ेगी। तदनुसार वह सिंहासन पर बैठता था, और एक दास पीछे से उसके सिर पर जूते लगाया करता था। इसके पश्चात् एक फ़रिश्ते ने आकर उसका सब राज-पाट छीनकर उसे निकाल दिया। जब नमरूद ने गली-गली का भिखारी बनकर महा-दुःख सह लिया, तब उसके होश ठिकाने हुए और उसने पाप-पुण्य के फल-विधाता के अस्तित्व को स्वीकार किया। श्रीस्वामीजी महाराज कहते हैं कि नमरूद के दुर्दशा भोगने का कारण यह हुआ कि उसने अपने को ईश्वर तो जाना, किंतु अपने परिच्छिन्न शरीर-मात्र को ही ईश्वर जाना; समस्त चराचर जगत् को ईश्वर नहीं जाना। इसी से उसकी यह दुर्गति हुई किंतु मैं नमरूद-जैसा अहंकार नहीं करता।

❋ विरक्त जीवन ❋

इस एकांत-अभ्यास से मस्त और आत्मानंद में मग्न गोसाईं तीर्थरामजी जब वन से लौटकर आए, तो उनके जीवन का ढंग ही दूसरा हो गया। अब वे संसार के व्यवहारों से बिलकुल अलग रहने लगे। पैसा-कौड़ी, घर-द्वार, अपने-पराए का भाव लुप्त होने लगा। वेतन मिलते ही वे उसे कालेज के छात्रों और चपरासियों के आगे रख देते और कह देते—"भगवन्, जिसको जितनी ज़रूरत हो, ले लो"। फिर भी जो बचता, उसे दीन-दुखियों और साधुओं को खिला देते। जो थोड़ी-बहुत रक़म गोसाईं हीरानंद के हाथ लगती, उससे घर का खर्च चलता। वेतन के अतिरिक्त उन्हें मिडिल और इंट्रेंस के विद्यार्थियों के पर्चे देखने की फ़ीस से भी यथेष्ट द्रव्य मिलती थी, किंतु वह भी सब यों ही खर्च हो जाती थी। खाने-खिलाने के अतिरिक्त गोसाईंजी को पुस्तकावलोकन का भी बड़ा शौक़ था। इसके लिये मेसर्स रामकृष्ण ऐंड संस बुकसेलर, लाहौर का फ़र्म नियत था। कोई भी पुस्तक गणित-विज्ञान या तत्त्व-ज्ञान पर निकलती, वह तत्काल मँगाई जाती और अध्ययन के पश्चात् लायब्रेरी में रक्खी जाती। इन सब खर्चों का परिणाम यह होता कि प्रायः महीने के अंत में जब उनके पास खाने तक को न रहता, तब उपवास किए जाते और जब कभी जलाने को तेल तक न रहता, तो पुस्तकें लेकर घर से बाहर ऐसे स्थानों में पहुँच जाते, जहाँ प्रकाश होता। उनकी यह दशा पढ़कर पाठक कहीं यह न समझ बैठें कि गोसाईं तीर्थरामजी दुखी और दरिद्र रहते थे।

नहीं-नहीं, महापुरुष गोसाईं तीर्थरामजी इस अवस्था में जितने सुखी और संतुष्ट थे, उतना कोई चक्रवर्ती सम्राट् भी हो सकता है या नहीं, इसमें संदेह है। उन्होंने अपने ११ दिसंबर १८६८ के पत्र में अपने गुरुजी को लिखा है—

"राम * इस बाहरी ग़रीबी की वजह से लाइन्तहा दर्जे की अमीरी और बादशाही कर रहा है! पहले तो बड़ी चिंता के साथ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयत्न हुआ करता था; अब आवश्यकताएँ बेचारी अपने आप पूरी होकर सम्मुख आ जायँ तो राम की दृष्टि उनपर पड़ जाती है; नहीं तो उनके भाग्य में राम का ध्यान कहाँ? प्रारब्ध-कर्म और काल-रूपी सेवकों को सौ बार ग़रज़ हो, तो आकर राम-बादशाह के चरण चूमें; अन्यथा उस शाहंशाह को इस बात की क्या परवा है कि अमुक सेवक आकर अपना नृत्य कर गया है या नहीं।

सौ बार ग़रज़ होवे तो धो-धो पियें क़दम;
क्यों चर्ख़-मिहरो-माह पै मायल हुआ है तू!
खंजर की क्या मजाल कि इक ज़ख़्म कर सके;
तेरा ही है ख़याल कि घायल हुआ है तू।"

हम पहले कह आए हैं कि जबसे राम-बादशाह उत्तराखंड से आए, उनके जीवन का स्रोत दूसरी ओर प्रवाहित होने लगा था। अब उनकी यह दशा थी कि कालेज में विद्यार्थियों को गणित के प्रश्न समझाते समय वे वेदांत के सिद्धांत सिद्ध करने लगते और अवसर पाकर उन्हें शम्सतबरेज़, मौलाना रूम आदि के उच्च कोटि के शेर सुनाकर, सूफ़ी-धर्म की गंभीर उक्तियों का मर्म खोलने लगते। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि विद्यार्थियों के चित्तों पर इन बातों का बड़ा प्रभाव पड़ता। वे राम को महापुरुष मानकर उनके प्रति भक्तिमान रहते। इस बात से मिशन

* गोसाईं तीर्थराम इन दिनों अपने को केवल 'राम' ही कहने लगे थे।

कालेज के मति-मलीन मिश्नरियों एवं स्वार्थ-परायण प्रोफ़ेसरों को उनसे ईर्षा उत्पन्न हो गई। उन लोगों ने परस्पर परामर्श करके साधु-प्रकृति गोसाईंजी को सलाह दी कि "आप जिनकी जगह पर काम करते हैं, वह प्रोफ़ेसर साहब अब विलायत से आनेवाले हैं, इसलिये यदि कहीं आपको जगह मिल सके, तो उसे प्राप्त करने का अभी से प्रबंध करें, नहीं तो कुछ दिनों बाद आपको बेकार बैठना होगा।" विश्व की वसुधा को तृणवत् समझनेवाले शाहंशाह राम यह सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए, क्योंकि वह उस नौकरी को पहले ही से छोड़ना चाहते थे। उसी समय ज्ञात हुआ कि ओरियंटल कालेज में रीडरी का स्थान रिक्त है और वहाँ केवल दो घंटे की ड्यूटी है। गोसाईंजी वहाँ नियुक्त हो गए। थोड़े ही दिनों बाद इस कालेज में गोसाईंजी को वेदांत और गणित पढ़ाने का काम सौंपा गया। गोसाईंजी का हृदय खिल उठा। मानों सोने में सुगंध आ गई। अब क्या था, राम-बादशाह के हृदय में भरा हुआ ज्ञान का अगाध सोता, जो झरना-रूप में चू-चू कर निकल रहा था, अब एक वेगवती नदी की धारा के समान बहने लगा। इसी समय भगत धन्नारामजी ने उन्हें सूचना दी कि मुरारीवाला में राम-बादशाह के घर पुत्र उत्पन्न हुआ है। इस सूचना का जो उत्तर गोसाईंजी ने दिया है, वह उनकी हार्दिक विशालता और निरासक्ति का पूर्ण फ़ोटो है। आप लिखते हैं कि—

"आपके पत्र से मालूम हुआ कि पुत्र उत्पन्न हुआ है। समुद्र में एक नदी आन पड़े तो कुछ ज्यादती नहीं हो जाती; और नदी कोई न गिरे, तो

कुछ कमी नहीं हो जाती। सूर्य का जहाँ प्रकाश हो, वहाँ एक दीपक रक्खा गया तो क्या और न रक्खा गया तो क्या ? जो ठीक उचित है वह स्वतः पड़ा होगा। किसी प्रकार का शोक तथा चिंता हम क्यों करें ? यह शोक चिंता करना ही अनुचित है। हम ज्ञानी नहीं, ज्ञान स्वयं हैं। देह से संबंध ही कुछ नहीं, देह और उसके संबंधी जानें और उनकी प्रारब्ध जानें, हमें क्या ?

मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं,
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योम भूमिर्नतेजो न वायुः
चिदानंदरूपः शिवोऽहम् शिवोहम्॥ १॥

अर्थ—मैं मन नहीं, बुद्धि नहीं, अहकार नहीं, चित्त नहीं; कान, जिह्वा, नासिका, और आँख भी नहीं; पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश भी नहीं; मैं तो चिदानंद-स्वरूप शिव हूँ, शिव हूँ।

गोसाईंजी की इस ब्रह्म-विद्या में निमग्न वृत्ति के कारण लड़के का नाम ब्रह्मानंद रक्खा गया। (आजकल यह लड़का काशी के हिंदु-विश्वविद्यालय में, एम्० ए०-क्लास में, पढ़ता है।)

इस वर्ष गरमियों की छुट्टियों में गोसाईंजी ने अमरनाथ की यात्रा की। मार्ग में श्रीनगर और कश्मीर की सैर करते हुए वहाँ की शोभा निरखकर उनके चित्त में जो आनंद का उद्रेक हुआ, उसे गोसाईंजी ने "कश्मीर की सैर" नाम से स्वयं अपनी लेखनी से लिखा है। विस्तार-भय हमें उस मनोहर वर्णन का किंचत् आभास देने को विवश करता है। जब मस्त और आनंद-स्वरूप

राम अमरनाथ से लौटकर आए, तो उनकी पवित्रता की ख्याति नगर में खूब फैल गई। इसी समय श्रीमन्नारायण स्वामी भी राम-बादशाह के दर्शन करने और उनका उपदेश सुनने का उनके निकट जाने लगे। राम के दर्शन और उपदेशों का श्रीमन्नारायण स्वामी के चित्त पर ऐसा जादू-भरा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपने का राम के चरणों में समर्पण कर दिया। राम और नारायण के संयोग का फल-स्वरूप, लाला हरलालजी की आर्थिक सहायता से एक प्रेस खोला गया और "अलिफ़"-नाम का एक उर्दू पत्र निकाला गया। इस पत्र के दो ही तीन अंक निकले थे कि इसके लेख पाठकों का इतने पसंद आए कि इसके पहले और दूसरे अंकों का दो-दो तीन-तीन बार छापकर पाठकों की सेवा में भेजना पड़ा।

❋ वानप्रस्थ या वन-वास ❋

इस आनंद-पूर्ण पत्र के अभी तीन ही अंक निकले थे कि ज्ञान की लाली राम के भीतर समा न सकी, उसकी लवें बाहर निकलने लगीं। अब राम-बादशाह का दस गज़ धरती के परकोटे में घिरकर बैठना और नर-नारियों के कोलाहल-पूर्ण नगर में रहना असंभव हो गया। अतः विरक्त और रंगे चित्त से विवश हुए राम, जुलाई १६००में, नौकरी छोड़ वनों का सिधारे। उनकी धर्मपत्नी भी पुत्रों-सहित उनकी संगिनी हुईं। साथ में स्वामी शिवगुणाचार्य, ला० तुलाराम(पश्चात् स्वामी रामानंद)लाला गुरुदास (पश्चात् स्वामी गोविंदानंद), अमृतसर-निवासी महात्मा निक्के शाह और नारायणदास (पश्चात् श्रीनारायण स्वामी)

आदि महज्जन उनके साथ हो लिए। प्रेम और आनंद के आँसुओं से भरे हुए कालेजों के विद्यार्थी, भजन-मंडलियों को साथ लिए और त्याग-वैराग्य-भाव के उद्दीपक भजनों को गाते, राम-बादशाह पर फूलों की वर्षा करते हुए, उन्हें स्टेशन पहुँचाने आए। स्टेशन पर दर्शकों का मेला लग गया। विदाई राम के ही शब्दों में सुनिए—

"अलविदा मेरी रियाज़ी, अलविदा। अलविदा, ऐ प्यारी रावी, अलविदा। अलविदा ऐ अहले-खाना, अलविदा। अलविदा मासूमे-नादाँ, अलविदा। अलविदा ऐ दोस्तो-दुश्मन, अलविदा। अलविदा ऐ शीत-उष्ण, अलविदा। अलविदा ऐ कुतुबो-तहरीर, अलविदा। अलविदा ऐ खुबसो-तक़दीस, अलविदा। अलविदा ऐ दिल खुदा ले अलविदा। अलविदा राम, अलविदा, ऐ अलविदा।

यारो, वतन से हम गए, हम से वतन गया;
नक़्शा हमारे रहने का जंगल में बन गया।
जीने का न अंदोह, न मरने का ज़रा ग़म;
यकसाँ है उन्हें ज़िंदगी और मौत का आलम।
वाक़िफ़ न बरस से, न महीने से वह इकदम;
शब की न मुसीबत, न कहीं रोज़ा का मातम।
दिन-रात घड़ी-पहर महो-साल में खुश हैं;
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं।
कुछ उनको तलब घर की, न बाहर से उन्हें काम,
तकिया की न ख्वाहिश है, न बिस्तर से उन्हें काम।
महलों की हवस दिल में न मंदिर से उन्हें काम,
मुफ़लिस से न मतलब न तवंगर से उन्हें काम।
मैदान में, बाज़ार में, चौपाड़ में खुश हैं;
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं।"

—इत्यादि

लाहौर से चलकर राम हरिद्वार पहुँचे। वहाँ से बद्रीनारायण का मार्ग पकड़ लिया। थोड़ी दूर चलकर जब देव-प्रयाग पहुँचे, तो स्वामी शिवगुणाचार्य आदि

कई साथी यहाँ से अलग हो गए। वे लोग तो बदरी-नारायण की ओर रवाना हुए और राम गंगोत्री की ओर चले। जब टिहरी पहुँचे, तो राम एकांत-स्थल खोजने लगे। टिहरी से लगभग दो मील की दूरी पर सेठ मुरलीधर का एक बहुत बड़ा बागीचा था, जिसे उक्त सेठ ने साधु-महात्माओं के एकांत-अभ्यास के लिये ही संकल्प कर दिया था। राम ने वहीं आसन जमा दिया। पैसा-कौड़ी जो कुछ जिसके पास था, राम-बादशाह ने उसे गंगा में फिकवा दिया और सबको एकांत-स्थान में अलग-अलग बैठकर 'अहंग्रह-उपासना' करने का आदेश किया। उन्होंने स्पष्ट कह दिया—"अब ईश्वर पर पूर्ण विश्वास करके निश्चित होकर अभ्यास करो।" राम की आज्ञा में विश्वास करके सब लोग यथास्थान चले गए। उसी दिन रात को अकस्मात् हृषीकेश के कलकत्ता-क्षेत्र का मैनेजर वहाँ आया और सब लोगों के भोजनों का प्रबंध करके चला गया। राम के इस ईश्वर-विश्वास और दैवी साहाय्य से सब लोग विस्मित हो गए और भविष्य के लिये सबके हृदयों में ईश्वर पर दृढ़ विश्वास हो गया। यहाँ रहकर राम की मस्त लेखनी से जो धारा प्रवाहित हुई, वह 'वन-वास' के नाम से छपी है।

कुछ समय यहाँ रहने के बाद एक दिन राम अपने साथियों से बिना कुछ कहे, दमयंती की नाईं अपनी स्त्री को सोती छोड़, राजा नल की तरह आप आधी रात को, अकेले, नंगे पैर नंगे शिर, उत्तर-काशी की ओर चल दिए। राम की इस लीला से उनकी साध्वी स्त्री के चित्त पर ऐसी गहरी चोट लगी कि वह बीमार हो गईं। राम

यद्यपि कुछ दिन पश्चात् कृपा करके फिर वहाँ लौट आए, किंतु उनकी पत्नी का स्वास्थ्य न सँभल सका। कुछ उस वन का जल-वायु भी उनके अनुकूल न हुआ। जब उनके स्वस्थ होने की आशा जाती रही, तो उन्होंने राम से अपने पुत्र (ब्रह्मानंद) के साथ घर जाने की इच्छा प्रकट की और राम की आज्ञा से ब्रह्मचारी नारायणदास उन्हें मुरारीवाला-ग्राम में, उनके श्वसुर गोसाईं हीरानंदजी के निकट, भेज आए।

❋ संन्यास-ग्रहण और तीर्थ-भ्रमण ❋

इस तरह राम को एकांत-निवास करते-करते जब छः मास हो गए, तो उनके भीतर संन्यास लेने की इच्छा तरंगें मारने लगी। हम पहले बतला आए हैं कि द्वारका-मठाधीश जगद्गुरु शंकराचार्य ने अपनी भेंट के समय उन्हें आज्ञा दे रक्खी थी कि "जब वैराग्य का स्रोत किसी तरह भीतर न समा सके, तो गंगा-तट पर संन्यास ले लेना।" यही हुआ भी। सन् १९०१ के आरंभ में, स्वामी विवेकानंदजी के शरीर त्यागने के कुछ दिन पहले, एक दिन राम-बादशाह ने नापित को बुलाकर सर्वतोभद्र कराया, गेरुए कपड़े रँगे गए, राम ने गंगा के बीच में खड़े होकर, ॐ ॐ का उच्चारण करते हुए, यज्ञोपवीत उतारकर गंगा को सौंपा और सूर्य-भगवान् को साक्षी करके गोसाईं तीर्थराम से स्वामी रामतीर्थ होकर गंगा से बाहर निकले और गेरुए वसन धारण कर लिए। उस समय उनके गौर-कांत, सुंदर मुख-मंडल पर एक अपूर्व, अलौकिक, दिव्य तेज देखा गया। उनके संन्यास-ग्रहण की सूचना प्रथम ते

उनके गुरुदेवजी को और पश्चात् सर्वत्र भेजी गई। खबर पाकर प्रतिदिन सैकड़ों मनुष्य उनके दर्शन करने और उपदेश सुनने के लिये आने लगे।

संन्यास लेने के पश्चात् स्वामीजी वहाँ छः महीने तक रहे, किंतु जब मनुष्यों के गमनागमन से वह स्थान एकांत न रह गया, तो स्वामी राम, १४ जून १९०१ ई० को, चुपके से चल दिए और वहाँ से ४-५ मील की दूरी पर, गंगा के किनारे, बमरोगी-गुफा में, रहने लगे। वहाँ भी दो-एक मास निवास करके ब्रह्मचारी नारायणदास और तुलाराम (पश्चात् श्रीनारायण स्वामी और रामानंद स्वामी) को साथ लेकर, १६ अगस्त १९०१ ई० को, राम-बादशाह यमुनोत्री, गंगोत्री, त्रियुगीनारायण, केदारनाथ, बदरीनारायण की यात्रा के लिये चल दिए। स्वामी राम ५ सितंबर १९०१ ई० अर्थात् जन्माष्टमी को यमुनोत्री पहुँचे और एक मास वहाँ रहकर यमुनोत्री के ऊपर, सुमेरु-पर्वत पर, जो बंदरपूछ के नाम से प्रसिद्ध है, सैर करने गए। यहाँ के मनोरम दृश्य से स्वामी राम को जो आनंद मिला उसका वर्णन उन्होंने 'सुमेरु-दर्शन' नाम के एक गद्य-पद्य-मय लेख में किया है। यमुनोत्री पहुँचने पर उनके चित्त की जो प्रफुल्लित, मस्त और आनंदमय अवस्था थी, वह उनके निम्नांकित गद्य-पद्य-मय पत्र से स्पष्ट है—

"इस बलंदी पर माश की दाल नहीं गलती, न दुनिया की ही दाल गलती है। निहायत गर्म-गर्म चश्मासार (अति उष्ण स्रोत) कुदरती लालाज़ार (प्राकृतिक दृश्य), चमकदार चाँदी को शर्मानेवाले

सफ़ेद दुपट्टे (अर्थात् यमुना के जल पर झाग, फेन) और उनके नीचे आकाश की रंगत को लजानेवाला यमुना-रानी का गात बात-बात में कश्मीर को मात करते हैं।

"आबशार (झरने) तो तरंगे-बेखुदी में (निजानंद में मग्न हुए) नृत्य कर रहे हैं, यमुना-रानी साज़ बजा रही हैं। राम-शाहंशाह गा रहा है—

हिप हिप हुर्रे। हिप हिप हुर्रे ॥ (टेक)
अब देवन के घर शादी है, लो राम का दर्शन पाया है।
पाओं[1] नाचते आते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १ ॥
ख़ुश ख़ुर्रम मिल-मिल गाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे।
हैं मगन साज़ बजाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ २ ॥
सब ख़्वाहिश मतलब हासिल हैं, सब ख़्वाबों से मैं वासिल हूँ।
क्यों हमसे भेद छुपाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ३ ॥
सब आँखों में मैं देखूँ हूँ, सब कानों में मैं सुनता हूँ।
दिल बरकत मुझसे पाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ४ ॥

गह[2] इश्वः सीमीबर का हूँ, गह नारा शेरे-बबर का हूँ।
हम क्या-क्या स्वाँग बनाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिपहिप हुर्रे ॥ ५ ॥
मैं कृष्ण बना, मैं कंस बना, मैं राम बना, मैं रावण था।
हाँ, वेद अब क़समें खाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ६ ॥

मैं अँतर्यामी साकिन हूँ, हर पुतली नाच नचाता हूँ।
हम सूरत तार हिलाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ७ ॥

सब ऋषियों के आईना-दिल में मेरा नूर दरख़शाँ[4] था।
मुझ ही से शाइर लाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ८ ॥
हर इक का अंतर आतम हूँ, मैं सबका आक़ा साहिब हूँ।
मुझ पाय दुलके जाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ९ ॥

---

(१) पाओं से, (२) कभी चाँदी जैसी सुंदर का नखरा हूँ, (३) वचन, (४) चमक रहा है।

मैं ख़ालिक़[५], मालिक, दाता हूँ, चश्मक[६] से दहर[७] बनाता हूँ।
क्या नक़्शे रंग जमाते हैं, हिप हिप हुरें, हिप हिप हुरें ॥१०॥

इक कुन[८] से दुनिया पैदा कर, इस मंदिर में खुद रहता हूँ।
हम तन्हा शहर बसाते हैं, हिप हिप हुरें, हिप हिप हुरें ॥११॥
वह मिसरी हूँ जिसके बाइस दुनिया की इशरत शीरीं है।
गुल मुझसे रंग सजाते हैं, हिप हिप हुरें, हिप हिप हुरें ॥१२॥
मसजूद[९] हूँ क़िबला[१०], काबा हूँ, माबूद[११] यहाँ[१२] नाक़ूस[१३] का हूँ।
सब मुझको कूक सुनाते हैं, हिप हिप हुरें, हिप हिप हुरें ॥१३॥

कुल आलम[१४] मेरा साया है, हर आन बदलता आया है।
जल[१५] क़ामित[१६] गिर्द घुमाते हैं, हिप हिप हुरें, हिपहिप हुरें ॥१४॥

यह जगत हमारी किरणें हैं, फैली हरसू[१७] मुझ मरकज़ से।
याँ बूक़लमूँ[१८] दिखलाते हैं, हिप हिप हुरें, हिप हिप हुरें ॥१५॥

मैं हस्ती सब अशिया की हूँ, मैं जान मलायक[१९] कुल की हूँ।
मुझ बिन बेबूद कहाते हैं, हिप हिप हुरें, हिप हिप हुरें ॥१६॥
जादूगर हूँ, जादू हूँ खुद, और आप तमाशा-बीं मैं हूँ।
हम जादू खेल रचाते हैं, हिप हिप हुरें, हिप हिप हुरें ॥१७॥
बेजानों में हम सोते हैं, हैवाँ में चलते-फिरते हैं।
इन्साँ में मर्द जगाते हैं, हिप हिप हुरें, हिप हिप हुरें ॥१८॥

संसार तजल्ली[२०] है मेरी, सब अंदर बाहिर मैं ही हूँ।
हम क्या शोले[२१] भड़काते हैं, हिप हिप हुरें, हिप हिप हुरें ॥१९॥
है मस्त पड़ा महिमा में अपनी, कुछ भी ग़ैर अज़ राम नहीं।
सब कल्पित धूम मचाते हैं, हिप हिप हुरें, हिप हिप हुरें ॥२०॥

---

(५) जगत्कर्ता, (६) पलक मारने से, (७) समय, युग, (८) आज्ञा (फ़रमान), (९) वंदनीय, (१०) प्रतिष्ठापात्र, (११) पूजनीय वा प्रार्थनीय, (१२) बाँग, (१३) शंख, (१४) जगत्, (१५) छाया, (१६) बिम्ब, (१७) ओर, (१८) नाना प्रकार, (१९) देवता, (२०) प्रकाश, (२१) लपटें, तेज।

दीवानगी को दिन-दूनी रातचौ-गुनी तरक़्क़ी है। "दीवाना हुए 'बसन्त" वाला हाल है। फ़िलिये अन्सरी (शरीर) का कुछ पता नहीं।

खुराक—फलाहार जो यमुना-रानी अपने हाथ से पका देती हैं अर्थात् गरम कुंड में खुद बखुद तैयार कर देती हैं।

स्नान—कभी-कभी सौ-सौ फ़ीट की बलंदी से गिरनेवाले आबशारों के नीचे स्नान की मौज लूटी जाती है, कभी सदियों की जमी हुई बर्फ़ से ताज़ा-ताज़ा निकलकर जो यमुनाजी आती हैं, उसमें स्नान का लुत्फ़ उड़ाया जाता है, और कभी कुंडों के तत्ते पानी में शहंशाह सलामत ग़ुसल फ़रमाते हैं।

चलना-फिरना—सब जगह बिलकुल नंगे बदन से होता है।

—राम-शहंशाह"

सुमेरु-दर्शन के अनंतर स्वामी रामतीर्थ यमुनोत्री आए। यमुनोत्री से धरसाली गाँव होकर, ऊपर के तुषार-पूर्ण दुर्गम मार्ग से धराली गाँव होते हुए, गंगोत्री पहुँचे। इस विकट हिमानी-मार्ग की यात्रा का विस्तृत वर्णन स्वामी राम ने अँगरेज़ी में, एक पुस्तिका-रूप में, किया है। गंगोत्री में रहने के पश्चात् स्वामी राम बूढ़े केदार और त्रियुगी-नारायण के मार्ग से केदारनाथ गए और केदारनाथ से बद्रीनारायण की यात्रा की। बद्रीनारायण दीपमालिका से एक सप्ताह पहले पहुँचे। उस वर्ष सूर्य और चंद्र, दोनों ग्रहण एक ही पक्ष में पड़े थे। सूर्य-ग्रहण-स्नान करने के पश्चात् स्वामी राम ने एक कविता लिखी जिसके दो-एक पद, पाठकों के विनोदार्थ, यहाँ दिए जाते हैं—

इश्क़ का तूफ़ाँ बपा है हाजते मयख़ाना नेस्त ।
ख़ूँ शराबो-दिल-कबाबो-फ़ुर्सते-पैमाना नेस्त ॥ १ ॥
सख़्त मख़मूरी है तारी, ख़्वाह कोई कुछ कहे ।
पस्त है आलम नज़र में वहशते-दीवाना नेस्त ॥ २ ॥
अल्विदा ऐ मर्ज़े-दुनिया, अल्विदा ऐ जिस्मो-जाँ ।
ऐ अतश, ऐ जू, चलो, ईं जा कबूतरख़ाना नेस्त ॥ ३ ॥
क्या तजल्ली है यह नारे-हुस्न शोला-ख़ेज़ है ।
मार ले पर ही यहाँ पर ताक़ते-परवाना नेस्त ॥ ४ ॥
मिह्र हो, मह हो, दबिस्ताँ हो गुलिस्ताँ कोहसार ।
मैाजज़न अपनी है ख़ूबी; सूरते-बेगाना नेस्त ॥ ५ ॥
लोग बोले, ग्रह ने पकड़ा है सूरज को, ग़लत ।
ख़ुद हैं तारीकी में पर मन सोया महजूवाना नेस्त ॥ ६ ॥
उठ मेरी जाँ, जिस्म से, हो ग़र्क़ ज़ाते-राम में ।
जिस्म बदरीश्वर की मूरत हर्कते-फ़र्ज़ाना नेस्त ॥ ७ ॥

❋ धर्म-सभाओं के जल्से और श्रीनारायण-स्वामी को संन्यास ❋

जब स्वामी राम बदरीनारायण से लौटने लगे, तो मथुरा से स्वामी शिवगुणाचार्यजी का पत्र मिला जिससे विदित हुआ कि वहाँ उन्होंने एक 'रिलीजस कान्फ्रेंस' करने का महोद्योग किया है, जिसका सभापति स्वामी रामतीर्थजी को मनोनीत किया गया है। अतः दिसंबर १९०१ में, स्वामीजी अपने साथियों (ब्रह्मचारी नारायणदास और तुलाराम)-सहित मथुरा पहुँचे और उस धर्म-महोत्सव में सभापति के आसन को सुशोभित किया। यहाँ राम-

बादशाह के मनोहर उपदेश और उनकी दिव्य तेज-पूर्ण मूर्ति के दर्शन से दर्शकों पर जो प्रभाव पड़ा, उसका लेखनी द्वारा वर्णन नहीं हो सकता।

मथुरा के बाद, फ़रवरी १९०२ में, स्वामी राम साधारण-धर्म-सभा के दूसरे वार्षिक अधिवेशन में फ़ैज़ाबाद आए। यहाँ हिंदू, मुसलमान, ईसाई और अन्य धर्म के प्रचारकों ने अपने-अपने धर्म की विशेषताएँ दिखलाईं। इस उत्सव में मुसलमानी धर्म की ओर से मौलवी मुहम्मद मुर्तज़ाअली-ख़ाँ साहब स्वामीजी से शास्त्रार्थ करनेवाले थे किंतु ज्योंही मौलवी साहब स्वामीजी के सम्मुख आए और इनकी मनोहर मूर्ति के दर्शन किए, उनका वह विरोध-भाव नहीं मालूम कहाँ चंपत हो गया, उलटे उनकी आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे और वे राम के बड़े प्रेमी बन गए।

साधारण-धर्म-सभा फ़ैज़ाबाद के वार्षिकोत्सव पर स्वामी राम की आज्ञा से ब्रह्मचारी नारायणदास ने भी व्याख्यान दिया था। नारायणदास के भाषण का श्रोताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा। यह देख स्वामी राम ने उन्हें संन्यास लेकर देश में उपदेश देने की आज्ञा दी। तदनुसार, मार्च १९०२ में, नारायणदासजी को संन्यास मिला और वे राम से अलग होकर गेरुए वसन पहनकर देश-देश में विचरने लगे। किंतु केवल ४ महीने विचरणकर, जून १९०२ में, वे फिर स्वामीजी के निकट पहाड़ों पर आ गए।

❋ टिहरी के महाराज से भेंट ❋

मई १९०२ में, जब स्वामी राम टिहरी-पर्वत पर गए, तो

आगरा भी उनके साथ हो लिए। टिहरी से देहरादून की ओर, लगभग ११ मील के अंतर पर, कौड़िया चट्टी नाम का एक पड़ाव है। यहाँ विशाल दुर्ग के समान एक पुरातन प्रासाद है, जो जीर्ण-शीर्ण पड़ा है। उसके चहुँओर सुवि-स्तीर्ण मैदान और विविध भाँति के सुरभित सुमनों से समाकीर्ण सघन वन है। इस रम्य स्थान पर यह जान पड़ता था, मानों प्रकृति देवी पुष्प-पादप-राजि से सज्जित होकर, मुग्धा-नायिका की भाँति, राम-बादशाह की प्रतीक्षा कर रही थीं। राम ने भी वहीं अपना आसन जमा दिया।

संयोग से टिहरी के महाराज, जो वाइसराय से मिलने के लिये देहरादून आ रहे थे, उस मार्ग से निकले और उसी चट्टी पर मुक़ाम किया। महाराज को जब राम-बादशाह के आगमन का समाचार मिला, तो उनके मन में दर्शनों की अत्यंत उत्कंठा हुई। उन्होंने अपने मंत्री द्वारा राम-बादशाह से दर्शन देने की प्रार्थना की। राम-बादशाह मंत्रीजी के साथ चले। टिहरी-महाराज, जो स्वागत के लिये मार्ग में खड़े थे, राम-बादशाह को अपने डेरे पर ले गए। महाराज टिहरी एक विद्वान् पुरुष थे, किंतु उनके चित्त पर हरबर्ट स्पेंसर के अज्ञेय-वाद (Agnosticism) ने अधिकार जमा रक्खा था, इसलिये वे agnostic (अज्ञेय-वादी) प्रसिद्ध थे। राम-बादशाह के वहाँ पहुँचते ही एक बहुत बड़ा दरबार लग गया। महाराज टिहरी ने ईश्वर के अस्तित्व-संबंध में प्रश्न किया। राम-बादशाह ने नाना युक्ति-प्रमाणों से, (२ बजे दिन से ५ बजे तक) ठीक तीन घंटे भाषण करके, ईश्वर

का अस्तित्व प्रत्यक्ष सिद्ध करने का प्रयत्न किया। इस सत्संग का महाराज के हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा और वे अत्यंत विनीत-भाव और श्रद्धा-सहित राम-बादशाह से प्रार्थी हुए कि "हृदय के बहुत-से संशय तो निवृत्त हो गए हैं, पर यदि राम महाराज टिहरी वा प्रतापनगर पधारने की कृपा करेंगे और ऐसे ही सत्संग की वर्षा होती रहेगी, तो सब संशय अवश्य नष्ट हो जायँगे।"

❋ विदेश-यात्रा ❋

टिहरी में कुछ दिन निवास करने के पश्चात् स्वामी रामतीर्थजी महाराज प्रतापनगर गए। यह स्थान पर्वत की चोटी पर है। इसे महाराज टिहरी के पितामह श्रीप्रतापशाह ने अपने निदाघ-निवास (Summer house) के लिये निर्माण कराया था। महाराज टिहरी भी वहीं गए। इन दिनों प्रति सप्ताह महाराज टिहरी श्रीस्वामीजी के निकट आते और जी-भरकर सत्संग करते थे। जुलाई १९०२ में, महाराज टिहरी ने किसी अँगरेज़ी समाचार-पत्र में यह समाचार पढ़ा कि "शिकागो की तरह जापान में भी संसार-भर के धर्मों का एक धर्म-महासम्मेलन (Religious Conference) होगा, जिसमें भारतवर्ष के भी सब धर्मों के विद्वानों को निमंत्रित किया गया है।" महाराज टिहरी स्वयं यह समाचार-पत्र हाथ में लिए श्रीस्वामीजी के निकट आए और उनसे उक्त कानफ़्रेंस में सम्मिलित होने की प्रार्थना की। स्वामीजी के स्वीकार करते ही महाराज ने तार भेजकर "थामस कुक ऐंड कम्पनी" के द्वारा स्वामीजी की यात्रा के लिये १०००) में जहाज़ के

किराए आदि का सब प्रबंध अपने आप कर लिया। श्री-स्वामीजी महाराज इस यात्रा के लिये टिहरी से लखनऊ और आगरा आदि स्थानों में घूमते, अपने प्रेमियों से मिलते, हुए कलकत्ते की ओर प्रस्थानित हुए। कलकत्ता पहुँचकर उन्होंने श्रीनारायण स्वामी को भी, अपने साथ ले चलने के लिये, कलकत्ते बुलाया और २८ अगस्त १६०२ ई० को वे जापान जाने के लिये जहाज़ पर सवार हुए। मार्ग में हांगकांग आदि बंदरों में ठहरते, व्याख्यान देते, लोगों को मोहित करते हुए आक्टोबर के प्रथम सप्ताह में स्वामीजी यूकोहामा नाम के जापान के बड़े बंदरगाह में उतरे। इस जल-यात्रा के समय उनके चित्त की जो गद्गद दशा थी, उसका आभास उनकी निम्न-लिखित कविता से मिलता है—

यह सैर क्या है अजब अनोखा कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ।
बग़ैर सूरत अजब है जल्वा कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ॥
मुरक़्क़ा-ए-हुस्नो-इश्क़ हूँ मैं, मुझीमें राज़ो-नियाज़ सब हैं।
हूँ अपनी सूरत पै आप शैदा कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ॥
फ़साना आईना राम का है हरएक सूरत से है वह पैदा।
जो चश्मे-हक़्क़ाँ खुली तो देखा कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ॥
वह मुझसे हर रंग में मिला है कि गुल से बू भी कभी जुदा है।
हबाबो-दरिया का है तमाशा कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ॥
सबब बताऊँ मैं वज्द का क्या, है क्या जो दर परदा देखता हूँ।
सदा यह हर साज़ से है पैदा कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ॥
बसा है दिल में मेरे वह दिलबर, है आइना में खुद आइनागर।
अजब तहय्युर हुआ यह कैसा? कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ॥
मुक़ाम पूछो तो लामकाँ था, न राम ही था न मैं वहाँ था।
लिया जो करवट तो होश आया कि राम मुझमें, मैं राम में हूँ॥
अलग़तपाता है पाक जल्वा कि दिल बना तूरे-बर्क़-सीना।

तड़प के दिल यूं पुकार उट्टा कि राम मुझमें, मैं राम में हूं ॥
जहाज़ दरिया में और दरिया जहाज़ में भी तो देखिए आज।
यह जिस्म किश्ती है, राम दरिया कि राम मुझमें, मैं राम में हूं ॥

❋ राम-बादशाह जापान में ❋

विदेशों में यह प्रथा है कि जब कोई बड़ा जहाज़ वहाँ आनेवाला होता है, तो उसके पहले और दूसरे दर्जे के सब यात्रियों के नाम, उसके आने के एक दिन पहले, उस बंदर के समाचार-पत्रों में छप जाते हैं। इसलिये, जापान में, जहाज़ के ठहरते ही, सेठ बस्यामल-आसूमल सिंधी-मर्चेंट के दो नौकर स्वामीजी को जहाज़ पर से उतारकर अपने फ़र्म में ले गए। एक सप्ताह तक वे वहाँ रहे किंतु जब उन लोगों को ज्ञात हुआ कि स्वामी रामतीर्थजी महाराज उनके यहाँ संसार-भर के धर्मों के महा-सम्मेलन में भाग लेने आए हैं, तो वे अत्यंत विस्मित हुए, क्योंकि उन लोगों को इसकी बिलकुल ख़बर तक न थी। इस प्रकार जब यूकोहामा में रिलीजस कानफ़्रेंस का कुछ पता न चला, तो उचित प्रतीत हुआ कि जापान की राजधानी टोकियो में उसका पता लगाया जाय। अतः सेठजी के एक सुचतुर नौकर के साथ स्वामीजी टोकियो गए और वहाँ एक भारतीय विद्यार्थी मिस्टर पूरनसिंह के मकान पर पहुँचे। पूरनसिंह निपट विदेश में अपनी जन्म-भूमि के दो तेजस्वी संन्यासियों को अपने घर पर आए हुए देखकर आनंद में विह्वल हो गए। किंतु जब स्वामीजी ने उनसे उक्त कानफ़्रेंस का हाल पूछा, तो ज्ञात हुआ कि किसी मसख़रे ने झूठमूठ यह ख़बर हिंदुस्तान के अख़बारों में

छपा दी है। इसका निश्चय हो जाने पर स्वामीजी ने तार-द्वारा भारतीय पत्रों में इस मिथ्या समाचार का प्रतिवाद छपा दिया।

उन दिनों टोकियों में भारतवर्ष के प्रोफ़ेसर छत्रे का सरकस अपने अद्भुत खेल दिखा रहा था और प्रोफ़ेसर महोदय के प्रस्ताव पर भारतवर्ष के नेपाल, पंजाब और युक्त प्रदेश के कितने ही विद्यार्थी, जो जापान में शिक्षा लाभ करते थे, कई भारत-हितैषी जापानी भाइयों की सहायता से वहाँ एक "इंडो-जापान क्लब" स्थापित कर रहे थे, जिसका उद्देश्य भारतीय नवयुवकों को जापान में बुलवाकर शिक्षा दिलवाना और परस्पर एक स्वदेश भाई का दूसरे स्वदेश-भाई की सहायता करना था। इस नूतन क्लब में राम-बादशाह के अनेक व्याख्यान हुए जिससे भारतीय विद्यार्थियों में एक नवीन जीवनी-शक्ति का संचार हुआ। इसके बाद टोकियों के हाई कमर्शल कालेज में स्वामीजी के 'सफलता का रहस्य' (Secret of Success)-विषय पर दो अत्यंत युक्ति-पूर्ण व्याख्यान हुए जिससे जापानी विद्यार्थियों और प्रोफ़ेसरों के हृदयों पर उनका एक विलक्षण प्रभाव पड़ा। इन व्याख्यानों के श्रीमन्नारायण स्वामी ने संक्षिप्त नोट्स लिए और मिस्टर पूरनसिंह ने जब उन्हें अपनी ओजस्विनी लेखनी से, राम की भाषा में, विस्तरित रूप देकर सम्मुख उपस्थित किया तो, राम-बादशाह ने प्रसन्न होकर प्यारे पूरनसिंह को प्रेम-पूर्ण दृष्टि से देखा। वार्तालाप करने पर विदित हुआ कि पूरनसिंह एक होनहार युवक, हरबर्ट स्पेंसर के मत के क़ायल, और सच्चे आनंद के जिज्ञासु हैं। उन्होंने कई बार स्वामीजी

से अपना कर्तव्य पूछा। स्वामीजी ने दूसरी बार उन्हें उत्तर दिया कि अपने अंतरात्मा से पूछो और उसका अनुसरण करो। किंतु जब उन्होंने तीसरी बार राम-बादशाह से वही प्रश्न किया, तो उन्होंने कह दिया—"Take up Sannyās and serve Humanitiy (संन्यास धारण करके मनुष्यत्व की सेवा करो)।" ×

❋ राम-बादशाह अमेरिका में ❋

इस उत्तर के कुछ दिन बाद श्रीनारायण स्वामी को योरप, आफ्रिका, सीलोन, ब्रह्मा प्रभृति देशों में प्रचार करने का आदेश देकर, स्वामी रामतीर्थजी महाराज, प्रोफ़ेसर छत्रे के साथ, अमेरिका प्रस्थानित हुए। अमेरिका पहुँचकर उन्होंने जो काम किया, उसका वर्णन इस छोटे-से लेख में करना असंभव है। संक्षेप में यह कि कुछ दिनों तक तो राम

×जब राम अमेरिका चले गए, तो मिस्टर पूरन ने संन्यास ले लिया और जापान के साधुओं (योगियों) की तरह साल-भर जापान के नगर-नगर में फिरकर और वेदांत का प्रचार किया। इतना ही नहीं, उन्होंने जापानी नवयुवकों में वेदांत का प्रभाव डालने के लिये "Thundering Dawn" (गर्जनशील प्रभात)-नाम का एक पत्र भी निकाला। एक वर्ष पश्चात् जब वह स्वदेश लौटे, तो कलकत्ते में उनके माता-पिता उन्हें लेने आए। पुत्र को साधु-वेश में देखकर वे बहुत रोए अपने घर पंजाब आकर बहुत समझा-बुझाकर उन्होंने उन्हें गृहस्थ बना लिया। आज कल मिस्टर पूरनसिंह रियासत ग्वालियर में फ़ारेस्ट डिपार्टमेंट के केमिकल ऐडवाइज़र-पद पर काम करते हैं। उनके अब ४-५ बच्चे हैं। लगभग ८-६ वर्षों से अब वे अपने जन्म के सिक्ख-धर्म में फिर वापस आ गए हैं, और अब मिस्टर पूरनसिंह के स्थान में सरदार पूरनसिंह के नाम से प्रसिद्ध हैं।

प्रोफ़ेसर छत्रे के साथ वहाँ घूमते और व्याख्यान देते रहे, किंतु स्याटलवाशा-नगर के बाद गुण-ग्राही अमेरिकन लोगों ने उन्हें प्रोफ़ेसर छत्रे के हाथ से छीन लिया। बहुत समय तक वह एक सहृदय सज्जन डाक्टर एल्वर्ट हिलर के पास सानफ़ान्सिस्को में रहे। यह नगर केलीफोर्निया का प्रसिद्ध क़सबा और बंदर-स्थान है। उक्त डाक्टर महाशय ने बड़ी श्रद्धा के साथ डेढ़ वर्ष तक स्वामीजी को अपने पास रक्खा और अपना एक बँगला उनके लिये रिज़र्व कर दिया। वहाँ स्वामीजी के उपदेश से लोगों ने कई सोसाइटियाँ बनाईं जिनका उद्देश ग़रीब भारतीय नवयुवकों की शिक्षा के लिये अमेरिका में हर प्रकार से सहायता करना था। स्वामीजी से नित्यप्रति सत्संग का लाभ उठाने के लिये एक "Hermetic Brotherhood" (साधुओं भाईचारा) स्थापित किया गया जिसमें अधिकतर उनके उपदेश होते थे। इन उपदेशों से स्वामीजी का इतना प्रभाव पड़ा कि वहाँ के कई समाचार-पत्रों ने उनके फ़ोटू छापकर "Living Christ has come to America (जीवित ईसा मसीह अमेरिका में आए हैं)" शीर्षक देकर अपने लेखों में उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। अमेरिका में स्वामीजी की इतनी ख्याति हुई कि तत्कालीन अमेरिकन प्रेसीडेंट ने भी उनके दर्शन किए। न्यूयार्क के एक पत्र ने लिखा—"अमेरिका में एक विचित्र भारतीय साधु आया है, जो अपनी ऐनक के अतिरिक्त और किसी धातु को स्पर्श नहीं करता। अपने साथ कुछ भोजन-सामग्री भी नहीं रखता। जब सैर को निकलता है, तो एक साधारण वस्त्र में कई दिनों तक अत्यंत

शीतल स्थानों में विचरण करता रहता है। जब व्याख्यान देता है, तो दिन में कई बार, और एक-एक बार में तीन-तीन घंटे लगातार बोलता रहता है। उसका सुंदर स्वरूप अत्यंत मनोहर है।" ग्रेट पैसिफ़िक आयल रोड कंपनी अमेरिका के मैनेजर ने लिखा—"एक भारतीय तत्त्व-वेत्ता स्वामी राम की न रुकनेवाली हँसी और माधुरी मुसकान मन को मोह लेती है।" सेंट लुइस की धार्मिक कानफ्रेंस के संबंध में वहाँ के एक लोकल पत्र ने लिखा—"इस समारोह में अकेला प्रफुल्ल मुखमंडल स्वामी राम का था जो एक भारतीय तत्त्व-वेत्ता हमको ज्ञान सिखाने आया है।" इत्यादि अगणित लेख अमेरिकन लेखकों की ओर से वहाँ के समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुए। राम के दर्शनों में इतना प्रभाव था कि अमेरिका में एक बार एक Athiest Society (नास्तिक समाज) की एक विदुषी लेडी राम के पास बहस करने आई। राम-बादशाह उस समय समाधिस्थ थे। नास्तिक लेडी, जब तक राम समाधि की अवस्था में थे, चुपचाप बैठी उनको देखती रहीं। समाधि खुलने पर जब स्वामी राम ने उनकी ओर देखकर अपना अभिप्राय प्रकट करने को संकेत किया, तो बहस करने की चुलबुली से भरी हुई लेडी उस नीरवता को भंग करती हुई बोलीं—"माई लार्ड! मैं नास्तिक नहीं हूँ। आपके दर्शन से मेरे सब संदेह दूर हो गए!" मिसेज़ वेलमैन अमेरिका में एक अत्यंत प्रेम-पूर्ण लेडी थीं। वह राम-बादशाह की ॐ ॐ की हृदय-हारिणी ध्वनि सुनकर ऐसी पुलकित हुई कि अपने पश्चिमीय वस्त्र उतारकर संन्यासिन बन गई और भारतीय संन्यासियों की तरह बिना कौड़ी-

पैसा पास रक्खे ही नगर-नगर विचरण करने लगीं। यह राम के प्रेम की मतवाली योगिनी भारतवर्ष में भी आई और जब राम की जन्म-भूमि के दर्शन करने के लिये मुरारीवाला-गाँव गईं, तो उस छोटे-से ग्राम को निरख कर हर्षातिरेक से गद्गद् हो गईं। इसके अरिरिक्त कितनी ही अन्य लेडियों ने भी भारत आकर राम की जन्म-भूमि के दर्शन करने की अभिलाषा प्रकट की और कर रही हैं। अस्तु। यह जो हम In Woods of God Realization नाम से ४ खंडों में स्वामी राम के अँगरेज़ी लेक्चर्स पढ़ने को पाते हैं, यह भी उन्हीं अमेरिकन लोगों की सभ्यता और उनके अकृत्रिम राम-प्रेम का फल है। बात यह थी कि स्वामी राम जब अमेरिका में लेक्चर देते थे, तो वे लोग शार्टहैंड में उनके व्याख्यान लिख लेते और बाद में टाइप राइटिंग मेशीन द्वारा उसकी चार-पाँच प्रतियाँ छापकर दो-एक राम को भेंट करते और शेष अपने व्यवहार में लाते। राम उन लेक्चरों को लेकर अपनी पुस्तकों की मंजूषा (संदूक) में डाल देते। इस प्रकार लोग उनको जितने भाषण दे गए और उनकी मंजूषा में रक्षित रहे, वे ही छप सके। जितने नष्ट हो गए या नहीं लिखे गए, उनका पता अब कौन लगा सकता है। स्वामी राम ने अपनी परमहंसी वृत्ति के कारण कभी अपने विषय के रिकर्ड या डायरी रखने की परवा नहीं की, यहाँ तक कि अमेरिका के-सैकड़ों समाचार-पत्रोंनेसमय-समयपर उनकी प्रशंसा में जो लेख छापे थे, उनकी ढेर की ढेर कतरनों को भी उन्होंने सैक्रेमैंटो नदी में फेंक दिया। इस लिये उन स्थानों की, जहाँ वह अकेले रहे, उनकी शृंखलित

जीवनी नहीं मिलती। वह एकांत सेवन के बड़े पक्षपाती थे। उनका कथन था, दूसरा साथ होने से मनुष्य की ईश्वर-निर्भरता को हानि पहुँचती है; वह अपने साथी की सहायता का अवलंब करने लगता है।

❋ राम-बादशाह मिस्र में ❋

अस्तु। अमेरिका में लाखों पवित्र हृदयों में वेदांत का भाव भरकर जिबराल्टर के मार्ग से राम मिस्र-देश में पहुँचे। वहाँ मुसलमानी समाज में, एक मसजिद में, उन्हों-ने फ़ारसी-भाषा में एक जादू-भरा व्याख्यान दिया जिससे मद्देशीय मुसलमान-भाई अत्यंत प्रसन्न हुए। सुना जाता है, वहाँ के सुप्रसिद्ध अरबी-भाषा के पत्र "अल्‌वहाब" ने राम-बादशाह के उस भाषण के नोट्‌स लिये थे और उन्हें अपने पत्र में "हिंदो फ़िलासफ़र" के शीर्षक से छापे थे। इसके अतिरिक्त स्वामीजी ने मिस्र में कुछ और भी काम किया या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर देने को इन पंक्तियों के लेखक के पास कोई साधन नहीं है। केवल इतना ही लिखा जाता है कि राम जहाँ जाते थे, उस देशवाले उनको अपना ही मान लेते थे और उनके सैकड़ों आशिक बन जाते थे।

❋ स्वदेश प्रत्यागमन ❋

इस प्रकार अन्य देशों में वेदांत का सिंहनाद करते हुए, स्वामी राम कोई ढाई वर्ष बाद, ८ दिसंबर १९०४ ई० को, बंबई में उतरे। विदेशों में जाने से पहले ही भारतवर्ष में

स्वामी राम की पर्याप्त ख्याति हो चुकी थी, इधर अमेरिका आदि जाने और अँगरेज़ी समाचार-पत्रों में उनकी चर्चा बढ़ जाने से समस्त भारत की आँखें उनके शुभागमन की प्रतीक्षा कर रही थीं। सब संप्रदायों के समाचार-पत्रों ने उनका अत्यंत प्रेम-पूर्ण शब्दावली में स्वागत किया। स्वामीजी को जहाज़ पर से उतारने के लिये, उनके अनेक प्रेमी जहाज़ पर गए। स्वदेश आने पर स्वामीजी का पहला व्याख्यान बंबई में हुआ। बंबई से आप आगरा, मथुरा और लखनऊ में अपने अनुभवों का वर्णन करते अपनी जादू-भरी वाणी से लोगों की तृषा शांत करते पुष्करराज पहुँचे। इन सब स्थानों में उनका बड़ी धूम-धाम से स्वागत होता रहा। स्वामीजी के उदार विचारों के कारण उनके स्वागत में आर्यसमाजी, सनातनधर्मी, ब्राह्मो, सिक्ख और ईसाई-मुसलमान तक सम्मिलित होते थे।

❋ राम-बादशाह के उदार भाव ❋

अमेरिका से प्रत्यागमन करने के पश्चात् जब श्रीस्वामीजी मथुरा पहुँचे, तो उनके कई भक्तों ने उनको परामर्श देना चाहा कि "स्वामीजी, अब आप किसी नए नामसे कोई संस्था स्थापित कीजिए।" उस उन्नत से उन्नतमना राम-बादशाह ने जो अनमोल वाक्य उच्चारण किए हैं, प्रत्येक देश-भक्त भारतवासी को उन्हें स्वर्णाक्षरों से अपने अंतःकरण में अंकित कर लेना चाहिए। श्रीस्वामीजी महाराज ने उत्तर दिया—

"भारतवर्ष में जितनी सोसाइटियाँ (सभा-समाजें) हैं, वे सब राम की हैं, राम उनमें काम करेगा।........ (आँखे बंद करके हाथ फैलाकर प्रेमाश्रु बहाते हुए) ईसाई, आर्य, सिक्ख, हिंदू, पारसी, मुसलमान और वे सब लोग जिनके अंग और हड्डियाँ, रक्त और मस्तिष्क मेरे इष्टदेव भारत-भूमि के अन्न और लवण से बने हैं, मेरे भाई हैं—हाँ, मेरे अपना आप हैं।"

"जाओ, उनको कह दो कि राम उनका है। राम उन सबको अपनी छाती से लगाता है और किसी को अपने प्रेमालिंगन से पृथक् नहीं समझता।"

"मैं संसार पर प्रेम की वर्षा बरसाऊँगा और संसार को आनंद में नहलाऊँगा। यदि कोई मुझसे विरोध प्रकट करेगा, तो मैं उसे 'स्वागत' कहूँगा।"

"क्योंकि मैं प्रेम की वर्षा करता हूँ, समस्त सोसाइटियाँ मेरी हैं; क्योंकि मैं प्रेम की बढ़िया लाऊँगा, प्रत्येक शक्ति मेरी शक्ति है, चाहे वह बड़ी हो या छोटी। ओहो! मैं प्रेम की वर्षा करूँगा।"

यह शब्दावली है या बहु-मूल्य मोतियों की लड़ी! राम-बादशाह ने और एक स्थल पर लिखा है—

"मैं शहंशाह राम हूँ। मेरा सिंहासन तुम्हारे हृदय में है। जब मैंने वेदों का उपदेश दिया, जब कुरुक्षेत्र में गीता सुनाई, जब मक्का और योरुशलम में अपने संदेशे सुनाए, तो लोगों ने मुझे ग़लत समझा था। अब मैं अपनी

आवाज़ फिर ऊँची करता हूँ। मेरी आवाज़ तुम्हारी आवाज़ है—'तत् त्वमसि', 'तत् त्वमसि', 'तत् त्वमसि',। कोई शक्ति नहीं जो इसको रोक सके।...... ..."

अहा! यह देखिए हिंदुओं के पतन की कारण, कलह की मूल एवं उन्नति की अवरोधक वर्ण व्यवस्था* पर उदार-चेता राम-बादशाह ने कैसी अद्भुत रीति से सार्वभौमिक व्यवस्था दे डाली। आपने अपने "ज़िंदा कौन है?"–शीर्षक लेख में बतलाया है कि जैसे जमादात, नबातात, हैवानात, इंसानात (खनिजवर्ग, वनस्पतिवर्ग, प्राणिवर्ग, मनुष्यवर्ग) यह चार प्रकार की यह सृष्टि है, वैसे ही चार प्रकार के स्वभाववाले मनुष्य भी हैं। वे मनुष्य जो खनिज धातुओं की तरह केवल नयन रंजक आभूषणों का ही काम देते हैं जिनके भीतर कुछ ज्ञान नहीं होता, अर्थात् जिनके जीवन का कोई लक्ष्य नहीं होता, शिश्नोदर-परायणता ही जिनके जीवन की सीमा है, स्वार्थरतता ही जिनका परम धर्म है और वासना-भोग ही जिनका परम पुरुषार्थ है, वे सोना

*पतन की कारण इसलिये कि वर्ण-गत कर्म की व्यवस्था होने से युद्ध करना केवल क्षत्रियों का ही कर्म था; अतः विदेशियों के आक्रमण में केवल अल्प-संख्यक क्षत्रियों के हार हो जाने से ही समस्त देश ने अपना पराजय स्वीकार कर लिया। कलह की मूल इसलिये कि वर्ण-व्यवस्था के प्रचार से आज भी भारत की समस्त हिंदू-जातियाँ अपने को उच्च-वर्ण होने के दावे कर रही हैं और एक दूसरी को घृणा की दृष्टि से देखती हैं; नीच वर्ण होकर रहना किसी को प्रिय नहीं। उन्नति की अवरोधक इसलिये कि हृदय और मस्तिष्क रखते हुए भी शूद्र वर्ण में परिगणित हिंदुओं की एक बहुत बड़ी जन संख्या को विद्यालोचना से वंचित रक्खा गया और यह एक सिद्ध बात है कि सार्वजनिक शिक्षा ही देश की उन्नति का मूल कारण है।

चाँदी, लोहा, हीरा आदि जड़ पदार्थों की भाँति शोभायमान, खनिजवर्ग-स्वभावापन्न 'पेट-पालू' मनुष्य हैं और उनका गीत-क्षेत्र 'लट्टू' के समान है, जो अपनी ही कील पर घूमा करता है। यही लोग वास्तव में शूद्र हैं।

जो मनुष्य वनस्पतियों की नाईं एक ही स्थान पर बढ़ते फूलते फलते हैं, धरती से रसादि चूसकर शाखा, पत्र आदि अपने कुटुंब को हरित रखते हैं और अपने निकट आए हुए पथिकादिकों को छाया और फलादि देते हैं तथा एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने की सामर्थ्य न रखने के कारण अत्याचारी पशुओं या मनुष्यों द्वारा नष्ट भी हो जाते हैं, वे वनस्पतिवर्ग-स्वभावापन्न 'परिवार-पालक' मनुष्य हैं और इनका गति-क्षेत्र 'कोल्हू के बैल' की नाईं है, जो अपने केंद्र के चारों ओर घूमा करता है। येही लोग वास्तव में वैश्य हैं।

जो मनुष्य पशवादिकों की नाईं अपनी जाति में ही अभेदता रखते हैं और अपनी ही जाति की वृद्धि, अपनी ही जाति की भलाई और अपनी ही जाति के प्रतिपालन में संलग्न रहते हैं अन्य जातियों की कुछ भी परवा नहीं करते, वरन् अन्य जातियों को अपनी जाति के आधीन कर लेना चाहते हैं, वे प्राणिवर्ग-स्वभावापन्न या 'जाति-प्रतिपालक' मनुष्य हैं और उनका गति-क्षेत्र घोड़दौड़ के घोड़े के समान है जो एक नियत सीमा के अंतर्गत चक्कर लगाया करता है। येही लोग वास्तव में क्षत्रिय हैं।

जिनमें मनुष्यों की नाईं न्याय आदि सद्गुण होने से जाति, वर्ण और मत आदि का पक्षपात नहीं होता, जो

अपने देश के प्रत्येक व्यक्ति को अपना सगा भाई समझते हैं, जिन्होंने अपने समस्त समय और ध्यान को देश की भलाई के लिये अर्पण कर दिया है, जिनको अपने देश की धूलि तक प्यारी है, वे लोग मनुष्य-स्वभावापन्न 'देश-भक्त' या 'देश-सेवक' हैं और उनका गति-क्षेत्र 'चंद्रमा की नाईं' है, जो देश की दारिद्र्य-निशा में चारों ओर प्रकाश छिटकाता है। येही लोग वास्तव में ब्राह्मण हैं।

इनके अतिरिक्त एक और पुरुष भी हैं जो पेट-पालक कुटुंब-पालक, जाति-पालक और देश-भक्तों से भी उत्तम हैं; वे अमृत पुरुष महात्मा लोग हैं जो विश्व-ब्रह्मांड को अपना ही आत्मा समझते हैं, उनमें मैं तैं का भाव नहीं होता, वे समस्त विश्व-ब्रह्मांड के प्राणात्मा हैं, और उनका गति-क्षेत्र सर्वत्र व्याप्त सूर्य के समान है। वे चाहें जिस देश या जाति में जन्में, प्राणी-मात्र को अमृत का दान करते हैं, उनमें द्वैत-भाव नहीं होता। वेही ईश्वर का साक्षात् अवतार हैं।

❋ एकांत-निवास की खोज। ❋

अस्तु। जब स्वामी राम एकांत-निवास के विचार से पुष्कर पहुँचे, तो श्रीनारायण स्वामी भी, जो लंदन में बीमार हो जाने के कारण स्वामीजी के भारत-आगमन से छः मास पूर्व, जुलाई १९०३ में भारत आ गए थे, जनवरी १९०५ में उनकी चरण-शरण में उपस्थित हुए। कई मास वहाँ सत्संग रहने के अनंतर राम-बादशाह श्रीमन्नारायण स्वामी को सिंध और अफ़ग़ानिस्तान में भ्रमण करने की

आज्ञा देकर, आप अजमेर और जयपुर में व्याख्यान देते हुए, दार्जिलिंग-पर्वत की ओर प्रस्थानित हुए। किंतु बंगाल और संयुक्त-प्रदेश में भ्रमण करने के अनंतर ऑक्टोबर १९०५ में जब स्वामीजी हरिद्वार पधारे, तो उनका शरीर ज्वर से इतना जर्जर हो गया कि आठ दिन तक वे बिछौने पर से उठ ही न सके। ख़बर पाकर श्रीनारायण स्वामी भी आए। किंतु स्वस्थ होते ही श्रीनारायण स्वामी को लखनऊ की ओर भेजकर स्वामीजी मुज़फ़्फ़रनगर चल दिए।

❋ व्यास-आश्रम-निवास और वेदाध्ययन ❋

शरीर में कुछ बल आते ही उनके मन में यह तरंग उठी कि अपने अमेरिका के लेक्चरों को, जो टाइप की हुई कापियों के रूप में उनके पास पड़े थे, संपादित करके Dynamics of mind के नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित करें, अतः श्रीनारायण स्वामी को लखनऊ से बुलाकर किसी एकांत-स्थान की खोज में, हरिद्वार होते हुए, नवंबर १९०५ में वे ऋषिकेश आए और वहाँ से कोई ३० मील की दूरी पर व्यास-आश्रम पधारे। यहाँ टिहरी-राज्यके सम्मुख एक निर्जन सघन वन है जिसमें अत्यंत प्राचीन, विशाल और ऊँचेऊँचेवृक्ष-समूह धरती को ढके हुए हैं। कहते हैं, इन्हीं वृक्षों की सघन शीतल छाया में भगवान् कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने तप किया था। यह स्थान सुनसान होने के साथ ही दुर्गम भी है। इसमें एक साधारण रस्सों के कच्चे पुल द्वारा भँगूरे में बैठकर एक दूसरे मनुष्य की सहायता से गंगा पार करके जाना होता है। राम-बादशाह ने उस स्थान को पसंद करके वहीं अपना आसन जमा दिया।

स्वामीजी जिस समय हरिद्वार से चलने लगे थे, तो एक पुराने विचारों के महात्माजी ने सत्संग करके अपने वार्तालाप द्वारा उनके चित्त पर यह अंकित कर दिया था कि बिना वेद-वेदांग के प्रमाण दिए हुए वेदांत विषय पर किसी ग्रंथ का प्रकाशित करना भारतवर्ष के लिये उपयुक्त नहीं, इसलिये वे किसी बृहद् ग्रंथ की रचना करने से पूर्व वेदाध्ययन का उपक्रम करने लगे। थोड़े मास के भीतर ही अत्यंत मनोयोग-पूर्वक उन्होंने पाणिनि-व्याकरण को निरुक्त और महाभाष्य-सहित पढ़ डाला, और फिर साम-वेद का अध्ययन आरंभ करके उसे समाप्त किया। इतने में सन् १६०६ का आधा फ़रवरी-मास व्यतीत हो गया। शिशिर-संचालित सबल समीरने कानन-वासी पादप-पुंज को पत्र-पल्लव-विहीन करना प्रारंभ कर दिया। अतः और अधिक एकांत और शीतल स्थान के अनुसंधान में फ़रवरी १६०६ में, राम-बादशाह वहाँ से भी चल दिए।

❋ वशिष्ठ-आश्रम-वास ❋

व्यास-आश्रम से चलकर राम देव प्रयाग होते हुए वशिष्ठ-आश्रम पहुँचे। यह स्थान टिहरी से ५० मील की दूरी पर लगभग १२००० फुट की ऊँचाई पर है। यहाँ व्यास-आश्रम से भी अधिक घना जङ्गल है। टिहरी के महाराजने अपनी राजधानी में बड़ी आतुरतासे उनकास्वागत किया और उनके भोजनादि के लियेअपने अनुचरोंको नियुक्त कर दिया। व्यास-आश्रम तक उन के भोजनादि काप्रबंध कालीकमलीवालेबाबा के कलकत्ता क्षेत्र के मैनेजर बाबा रामनाथ द्वारा होता रहा था, वशिष्ठ-आश्रममें रियासत ने किया। वहाँ उत्तम भोजन-

सामग्री न मिलने के कारण स्वामीजी का स्वास्थ्य बिगड़ गया और वे अत्यंत कृशांग और दुर्बल हो गए । स्वामीजी ने अन्न त्याग दिया और केवल पयाहार पर निर्भर रहने लगे । इससे रोग-मुक्त तो हुए, पर शरीर में बल न आ सका । वेदाध्ययन निरंतर होता था । यहाँ पर स्वामीजी ने कई स्थान परिवर्तन किए, किंतु उनके स्वास्थ्य को तनिक भी लाभ न हुआ । वशिष्ठ-आश्रम में मि० पूरनसिंह भी, पं० जगतराम आदि साथियों के साथ स्वामीजी के दर्शनार्थ आए और लगभग एक मास उनके निकट वास करके उनसे अंतिम विदाई ग्रहण कर साधु-लोचन लौट गए । दूषित खाद्य-सामग्री मिलने के कारण वहाँ मिस्टर पूरन और उनके साथियों का भी स्वास्थ्य बिगड़ गया था, अतएव उन लोगों ने स्वामीजी से वह स्थान छोड़ देने के लिये प्रार्थना की, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया ।

❋ अंतिम निवास और जल-समाधि ❋

ऑक्टोबर १९०६ में राम फिर टिहरी आए और टिहरी के महाराज के सिमलासु बाग में ठहरे । दो सप्ताह वास करने के पश्चात् वे फिर एक ऐसे एकांत-स्थान की खोज करने लगे जिसे फिर बदलना न पड़े । टिहरी से कुछ दूर चलकर भृगु-गंगा के किनारे मालीदेवल-ग्राम से लगभग एक मील के अंतर पर वे एक ऐसे रम्य स्थान पर पहुँचे जो तीन ओर गंगाजी से वेष्टित होने के कारण अत्यंत सुंदर और सुहावना था । यह स्थान लगभग सौ वर्षों से साधु-महात्माओं का एकांत-स्थान बना हुआ था और

इस समय रिक्त पड़ा था। राम-बादशाह ने उसे पसंद कर लिया और वहाँ अपनी कुटिया बनाने का मानचित्र स्वयं अपने कर-कमलों से खींचा। खबर मिलते ही टिहरी-महाराज ने स्वामीजी के साथियों को कुटिया बनाने से रोक दिया और अपने यहाँ के पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट के सुपरिंटेंडेंट को भेजकर स्वामीजी के खींचे हुए मानचित्र के अनुसार पक्की कुटिया बनवाने की आज्ञा दे दी। टिहरी महाराज के इस अकृत्रिम प्रेम से स्वामीजी अति प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने शेष जीवन तक वहीं रहने का पक्का विचार कर लिया।

जब स्वामीजी ने अपने लिये एकांत स्थान मनोनीत कर लिया, तो उनके मन में श्री-नारायण स्वामी के लिये भी एकांत-स्थान ढूँढ देने की तरंग उठी। अतः उस स्थान से तीन मील की दूरी, पर गंगा के किनारे, बमरोगी-गुफा को उन्हों ने पसंद किया, जहाँ वे स्वयं सन् १६०१ ई० में श्री-नारायण स्वामी को साथ लेकर कुछ दिन रह चुके थे उन्होंने श्रीनारायण स्वामी को उसमें रहकर एकांत-अभ्यास करने की आज्ञा दी। आज्ञानुसार नारायण स्वामी उस गुफा की ओर जाने लगे, तो राम-बादशाह, नंगे सिर नंगे पैर, सैर करने के बहाने, बहुत दूर उन्हें पहुँचाने गए। मार्ग में श्रीनारायण स्वामी को उन्होंने अनेक सदुपदेश इस शैली से दिए जिनसे प्रतीत होता था, मानों वे उनको अपना अंतिम आदेश सुना रहे हैं। राम के उन वियोग-व्यथा-व्यंजक वाक्यों को सुनकर श्रीनारायण स्वामी रोने लगे। राम-बादशाह ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—

'बेटा' घबराओ नहीं। गुफा में एकांत रहकर अभ्यास और अध्ययन करो, नित्य आत्मचिंतन करते हुए अपनी वृत्तियों को अंतर्मुखी करो। राम के पार्थिव शरीर का प्रेम छोड़ दो ; राम के दिव्य रूप में वास करो। सर्व-प्रकार से वेदांत का स्वरूप बनो। किसी का सहारा मत लो। अपने पैरों आप खड़े होना सीखो। प्रति सप्ताह रविवार को राम के पास आते रहो।"

इस प्रकार अपना अंतिम उपदेश देकर राम-बादशाह ने श्रीनारायण स्वामी को विदा किया और उसके पाँचवें दिन, अर्थात् १७ ऑक्टोबर सन् १९०६ ई० तदनुसार कार्तिक कृष्ण १५, दीपमाला को, मध्याह्न के समय, वे भृगु-गंगा में स्नान करने गए और गंगा की वेगवती धारा में, आकंठ जल में, स्नान करते समय, डुबकी लगाते ही, पैर के नीचे का पत्थर खिसक जाने से, एक भँवर में पड़कर, उनका निष्पाप, निष्कलंक, परिश्रमी, कर्तव्य-परायण, दर्शनीय, कमनीय, परमोपयोगी, कई मास से रोग-ग्रसित रहने कारण कृश, गौर वर्ण और दिव्य तेजोमय शरीर, उनकी परम प्यारी गंगा में, सदा के लिये लीन हो गया।

अपने लेख की जिन अंतिम पंक्तियों को लिखकर राम-बादशाह गंगा-स्नान करने गए थे, वे ये हैं—

"ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इंद्र, गंगा, भारत!

"हे मौत! बेशक उड़ा दे इस एक जिस्म को; मेरे और अजसाम ही मुझे कुछ कम नहीं। सिर्फ़ चाँद की किरणें, चाँदी की तारें पहनकर चैन से काट सकता हूँ। पहाड़ी

नदी-नालों के भेस में गीत गाता फिरूँगा, बहरे-मव्वाज के लिबास में लहराता फिरूँगा। मैं ही बादे-खुश-खराम और नसीमे-मस्ताना-गाम हूँ। मेरी यह सूरते-सैलानी हर वक्त रवानी में रहती है। इस रूप में पहाड़ों से उतरा; मुरझाते पौदों को ताज़ा किया; गुलों को हँसाया, बुलबुल को रुलाया; दरवाज़ों को खटखटाया, सोतों को जगाया; किसी का आँसू पोंछा, किसी का घूँघट उड़ाया। इसको छेड़ा, उसको छेड़ा, तुझको छेड़ा। वह गया! वह गया!! वह गया!!! न कुछ साथ रक्खा, न किसी के हाथ आया।"

❋ उपसंहार ❋

राम-बादशाह के भौतिक शरीर के जल-समाधि लेने का समाचार लेकर जब मिस्टर पूरनसिंह मुरारीवाला गावँ पहुँचे, तो स्वामीजी महाराज की पति-प्राणा पत्नी अपने पूज्य देवता के देहावसान का समाचार सुनते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। यद्यपि अनेक उपचारों से वे चैतन्य हुईं; किंतु उस घड़ी से उन्हें उन्माद-सा हो गया और जून १९०७ में वह अपनी पार्थिव देह त्यागकर पतिलोक-वासिनी हुईं। श्रीस्वामीजी के पिता गोसाईं हीरानंदजी ने सन् १९०६ में शरीर त्याग किया। श्री स्वामीजी महाराज के ज्येष्ठ पुत्र गोसाईं मदनमोहनजी, जो टिहरी-महाराज की आर्थिक सहायता से विलायत जाकर तीन वर्ष की पढ़ाई के पश्चात् माइनिंग इंजीनियरी परीक्षा पास करके, सन् १९०६ में, भारतवर्ष आ गए थे, आज कल पटियाला-रियासत में माइनिंग इंजीनियर के

पद पर काम करते हैं और उनके छोटे पुत्र गोसाईं ब्रह्मानंद-जी आजकल काशी के हिंदू-विश्वविद्यालय में, एम्० ए० क्लास में, शिक्षा लाभ कर रहे हैं। इस होनहार नवयुवक के रूप का दर्शन करते ही स्वामी रामतीर्थजी महाराज की छवि नेत्रों के सम्मुख आ जाती है। स्वामीजी के एक कन्या भी थी जो दारुण क्षय-रोग से पीड़ित होकर, १९१५ में, स्वर्ग-वासिनी हो गई थी। स्वामीजी के जेष्ठ भ्राता गोसाईं गुरुदासजी और कनिष्ठ भ्राता गोसाईं मोहन-लाल जी आज भी वर्तमान हैं, और मालाकंड में, ब्रह्म-वृत्ति द्वारा अपना काल-यापन करते हैं।

* स्वामी राम के भक्त *

यों तो राम जहाँ गए उनके चरण छूने से अहिल्या की नाईं पत्थर भी जीवित हो गए पर कई एक व्यक्ति विशेष, जिन्होंने राम को अपने जीवन का आदर्श मानकर उनके उपदेशों का अनुयायी होना सहर्ष स्वीकार किया था। उनमें से कुछ यह हैं:—अमरीका में मिसिज़ वैलमेन तत्पश्चात् सूर्यानंद), डाक्टर विलियम गिबसन (पश्चात् स्वामी नारद) डाक्टर एल्बर्ट हिल्लर (पश्चात् स्वामी गोतम) इत्यादि जापान में प्रोफैसर टाटाक्यो इत्यादि। भारतवर्ष में तो राम-बादशाह के अनेक भक्त वा राम के जीवन को अपना आदर्श माननेवाले हैं पर उनमें से प्रसिद्ध-प्रसिद्ध ये हैं— स्वर्गवासी महाराजा साहब टिहरी, स्वर्गवासी राय बहादुर ला० शालग्राम साहब तथा बा० गंगाप्रसाद वर्मा जी, फैज़ाबाद के प्रसिद्ध रईस लाला रामरघुवीरलाल और प्रसिद्ध कार्यकर्ता बा०

सुरजनलाल पांडेयजी देहरादून के प्रसिद्ध रईस लाला बलदेवसिंहजी, इलाहाबाद के प्रसिद्ध नेता पं० मदनमोहन मालवीयजी; आगरा के प्रसिद्ध स्वर्गवासी राय बहादुर लाला बैजनाथजी, मुज़फ़्फ़रनगर के प्रसिद्ध रईस स्वर्गवासी राय बहादुर लाला निहालचंद जी, मेरठ के प्रसिद्ध रईस लाला रामानुजदयालजी, लाहौर के प्रसिद्ध स्वामी शिवानन्दजी, तथा डाक्टर मुहम्मद इक़बालजी और लय्या के मियाँ मुहम्मदहुसेन आज़ादजी।

जिन सज्जनों को स्वामी राम से संन्यास मिला अर्थात् जिन लोगों ने स्वामीजी की आज्ञा वा आदेश से संन्यास धारण किया और संन्यासी, नाम पाया, वे निम्नलिखित हैं।

सब से पहले स्वामी रामानंद को संन्यास दिया गया। इनका पहला नाम तुलाराम था। इनका शरीर अब छूट चुका है। इसके बाद श्रीमन्नारायण स्वामी को संन्यास दिया गया। इनका पूर्व नाम नारायणदास था। इसके बाद सरदार पूर्णसिंहजी को जापान में ही संन्यास धारण करने की आज्ञा मिली और वह एक वर्ष संन्यासी रहकर फिर गृहस्थ हो गए और आजकल ग्वलियार-रियासत में चीफ़ कैमिस्ट हैं। अंत में स्वामी गोविंदानंद तथा स्वामी पूर्णानंद को संन्यास लेने की आज्ञा मिली। इनका नाम गुरुदास तथा रामप्रताप था। जहाँ तक पता चलता है, इनके अतिरिक्त और किसी व्यक्ति को स्वामीजी ने अपने कर से संन्यास नहीं दिया, यद्यपि आज कल बीसियों महात्मा अपने आपको उनका संन्यासी-शिष्य प्रख्यात करते हुए सुने जाते हैं।

स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ सन् १९२३।

सूचीपत्र।

Catalogue.

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग,
गणेशगंज, लखनऊ।

THE RAMA TIRTHA,

Publication League,

Ganesh Gunj, LUCKNOW.

Printed by K. C. Banerjee at the Anglo-Oriental Press,
LUCKNOW.

के० सी० बनर्जी के प्रबन्ध से

ऐंग्लो-ओरियन्टल प्रेस, लखनऊ में छपी—१९२३

कमीशन दर।

एकट्ठा खरीदने वाले ग्राहकों व एजंटों के लाभ के लिये लीग ने अपने गत अधिवेशन में निम्न लिखित दर कमीशन की पास की है जिस से रामोपदेशों का प्रचार दिन बदिन उन्नति पकड़ता रहे।

(१) २०) रु० से कम के खरीदार को कोई कमीशन नहीं दिया जायगा।

(२) २०) रु० से ३०) रु० तक के खरीदार को १०) रु० सैंकड़ा।

(३) ३०) रु० से ५०) रु० तक के खरीदार को १५) रु० सैंकड़ा।

(४) ५०) रु० से २००) रु० तक के खरीदार को २०) रु० सैंकड़ा।

(५) २००) रु० से ऊपर के खरीदार को २५) सैंकड़ा कमीशन दिया जायगा।

मन्त्री

श्री राम तीर्थ ग्रन्थावली

के

रजिस्टर्ड ग्राहकों के नियम ।

१. एक वर्ष में २०×३० (डबल क्राऊन) साइज़ के १६ पेजी आकार के १६० पृष्ठ के छे खण्ड अर्थात् ६६० पृष्ठ दिये जायंगे और प्रत्येक भाग में एक फोटो भी होगी।

२. ऐसे छे खण्डों का पेशगी वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित साधारण संस्करण ३) रु० विशेष संस्करण ४॥) रु० होगा।

३. ग्रन्थावली का वर्ष कार्तिक शुक्ल १ से आरम्भ होकर कार्तिक कृष्ण १५ तक पूरा होता है। वर्षारम्भ में ही प्रथम खण्ड वी० पी० द्वारा भेजकर वार्षिक मूल्य प्राप्त किया जाता है, या ग्राहक को मनीआर्डर द्वारा भेजना होता है।

४. वर्तमान वर्ष के मध्य या अन्त में मूल्य देने वाले को उसी वर्ष के छे खण्ड दिये जायगे, अन्य किसी वर्ष के मास से १२ मास तक का वर्ष नहीं माना जायगा। किसी ग्राहक को थोड़े एक वर्ष के और थोड़े दूसरे वर्ष के खण्ड वार्षिक मूल्य के हिसाब से नहीं दिये जायँगे।

५. किसी एक खण्ड के खरीदार को उस खण्ड की क़ीमत स्थायी ग्राहक होते समय उस के वार्षिक मूल्य में मुजरा नहीं की जायगी, अर्थात् वार्षिक मूल्य की पूरी रक़म एक साथ पेशगी देनेपर ही खरीदार स्थायी ग्राहक माना जायगा।

६. एक खण्ड का फुटकर दाम साधारण संस्करण का ॥=) और विशेष संस्करण का ॥।=) होगा, डाकव्यय अतिरिक्त।

७. पत्रव्यवहार में उत्तर के लिये टिकट या कार्ड भेजना उचित होगा, अन्यथा उत्तर की सम्भावना अवश्य नहीं। पता पूरा २ और साफ आना चाहिये, यदि होसके तो ग्राहक नं० भी।

मैनेजर—श्री राम तीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ।

(१) श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली ।

अर्थात् ब्रह्मलीन परमहंस श्री स्वामी रामतीर्थ के व्याख्यानों तथा लेखों का हिन्दी संग्रह ।

अब तक हिन्दी के पाठक व्यावहारिक वेदान्त पर राम भगवान् के अमूल्य तथा अनुभव सिद्ध उपदेशों से वञ्चित थे । इन उपदेशों को सर्व साधारण तक पहुँचाने के लिये ही राम-प्रेमियों ने **श्रीस्वामी रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग** की स्थापना की है । इन उपदेशों से आत्मानुभव करने का बहुत सरल व सुगम मार्ग मिल जाता है ।

इस **ग्रन्थावली** में स्वामी राम के बहुत से अंग्रेज़ी तथा उर्दू भाषा के समस्त व्याख्यानों, लेखों और उन पत्रों के भी अनुवाद का संग्रह है कि जो श्री स्वामी रामतीर्थ जी ने अपने पूर्वाश्रम के गुरु भगत् धन्नाराम जी को अपनी बाल्यावस्था से ले कर देह त्याग समय तक लिखे थे । इस में वह भजन भी प्रकाशित हुए हैं कि जो स्वयं राम की लेखनी से बहे थे या जो राम की नोट बुकों में अन्य सज्जनों के पाये गये थे ।

गत चार वर्षों के छे छे भागों के चार खण्ड (Sets) अर्थात् २४ भाग तैयार हैं ।

मूल्य प्रत्येक खंड डाक व्यय रहित ।

साधारण संस्करण कागज़ी जिल्द ३) रु० फुटकर भाग ।॥=)

विशेष संस्करण सजिल्द ४॥) रु० फुटकर भाग ॥।=)

पाँचवे वर्ष का पाँचवाँ खण्ड (सेट) मास जनवरी सन् १९२४ से प्रकाशित होगा । उस का पेशगी वार्षिक शुल्क डाक व्यय सहित ।

साधारण संस्करण कागज़ी जिल्द ३) फुटकर भाग ॥=)
विशेष संस्करण सजिल्द ४॥) रु० फुटकर भाग ॥।=) है।

प्रत्येक भाग रजिस्टर्ड पैकट द्वारा मंगाने वाले को ।॥) अधिक देने होंगे, और प्रत्येक भाग वी पी द्वारा मंगाने वाले को ॥) प्रवेश शुल्क पेशगी भेजना होगा।

उक्त २४ भागों की विषय सूची नीचे दी जाती है, और जहां २ जिस २ व्याख्यान का अनुवाद अंग्रेज़ी भाषा से हुआ है, वहां २ उस का नाम अंग्रेज़ी भाषा में भी दे दिया है :—

पहिला भागः—(१) आनन्द (Happiness within). (२) आत्म-विकास (Expansion of self). (३) उपासना. (४) वार्तालाप।

दूसरा भागः—(१) संक्षिप्त जीवन चरित्र. (२) सांत में अनन्त (The Infinite in the finite). (३) आत्म-सूर्य और माया (The Sun of Life on the wall of mind). (४) ईश्वर भक्ति. (५) व्यावहारिक वेदान्त. (६) पत्र मंजूषा. ७ माया (maya)।

तीसरा भागः—(१) राम परिचय. (२) वास्तविक आत्मा (The real Self). (३) धर्म तत्व. (४) ब्रह्मचर्य (५) अकबर-दिली. (६) भारत वर्ष की वर्तमान आवश्यकतायें (The present needs of India). (७) हिमालय (Himalaya). (८) सुमेरु दर्शन (Sumeru-scene). (९) भारत वर्ष की स्त्रियां (Indian womanhood). (१०) आर्य माता (About wifehood). (११) पत्र मंजूषा।

चौथा भागः—(१) भूमिका (Preface by mr. Puran in Vol. I). (२) पाप; आत्मा से उस का

सम्बन्ध (Sin Its relation to the Atman or real Self). (३) पाप के पूर्व लक्षण और निदान (Prognosis & Diagnosis of Sin). (४) नक़द धर्म. (५) विश्वास या ईमान. (६) पत्र मंजूषा ।

पाँचवाँ भागः—(१) राम परिचय. (२) अवतरण (A brief of introduction by the late Lala Amir chand, Published in the fourth volume). (३) सफलता की कुंजी (Lecture on Secret of Success, delivered in Japan). (४) सफलता का रहस्य (Lecture on Secret of Success, delivered in America). (५) आत्म–कृपा ।

छटा भागः—(१) प्रेरणा का स्वरूप (Nature of Inspiration). (२) सब इच्छाओं की पूर्ति का मार्ग (The way to the fulfilment of all dsires). (३) कर्म. (४) पुरुषार्थ और प्रारब्ध, (५) स्वतंत्रता ।

सातवाँ और आठवाँ भागः—रामवर्षा, प्रथम भाग (स्वामी राम कृत भजनों के नौ अध्याय), और दूसरा भाग (जिस के केवल तीन अध्याय दर्ज हैं) ।

नवाँ भागः—राम वर्षा का दूसरा भाग समाप्त ।

दशवाँ भागः—(१) हज़रत मूसा का डंडा (The Rod of Moses). (२) सुधार. (३) उन्नति का मार्ग या राहे–तरक्क़ी. (४) राम ढिंढोरा (The Problem of India). (५) जातीय धर्म (The National Dharma).

ग्यारहवाँ भागः–(१) रामके जीवन पर विचार श्रीयुत पादरी सी, एफ, एण्ड्रयूज द्वारा. (२) विजयनी आध्यात्मिक शक्ति (The Spiritual power that wins). (३) लोगों को

वेदान्त क्यों नहीं भाता (रिसाला अलफ़ से राम का हस्त लिखित उर्दू-लेख)।

<u>बारहवाँ भागः</u>—(१) सुलह कि जंग ? गंगा तरंग।

<u>तेरहवाँ भागः</u>—(१) "सुलह कि जंग ? गंगा तरंग" का अवशिष्ट भाग. (२) आनन्द. (३) राम परिचय।

<u>चौदहवाँ भागः</u>—(१) भारत का भविष्य (The Future of India) (२) जीवित कौन है. (३) अद्वैत. (४) राम।

<u>पन्द्रहवाँ भागः</u>—(१) नित्य-जीवन का विधान (The Law of Life Eternal). (२) निश्चल चित्त (Balanced mind). (३) दुःख में ईश्वर (Out of misery to God within). (४) साधारण बात चीत (Informal Talks). (५) पत्र मंजूषा।

<u>सोलहवाँ भागः</u>—(१) ग़ैर मुल्कों के तजरुबे (अनुभव). (२) अपने घर आनन्दमय कैसे बना सकते हैं (How to make your homes happy). (३) गृहस्थाश्रम और आत्मानुभव (Married life & Realization). (४) मांस-भक्षण पर वेदान्त का विचार (Vedantic idea of eating meat).

<u>सतरहवाँ और अठारहवाँ भागः</u>—(१) रामपत्र, तीन भागों में विभक्त, अर्थात् बाल्यावस्था से ब्रह्मलीन अवस्था तक जो पत्र राम से अपने पूर्वाश्रम के गुरु भगत धन्नाराम जी को तथा संन्यासाश्रम में अपने अनेक प्रेमियों को लिखे गये.

<u>उन्नीसवां भाग</u> (१) सत्य का मार्ग (The Path of Truth).(२) धर्मका अन्तिम लक्ष्य(The Goal of Religion). (३) परमार्थ निष्ठा और मानसिक शक्तियां (True Spiri

tuality) and Psychic Powers). (४) चरित्र सम्बन्धी आध्यात्मिक नियम (The Spiritual Law of character). (५) भारत की ओर से अमेरिका वासियों से विनती (An Appeal to Americans on behalf of India). (६) निजानन्द सकल विभूतियों का तमस्सक है (खुश्मस्ती, तमस्सके अरूज)।

भाग बीसवां (१) स्वर्ग का साम्राज्य (The Kingdom of Heaven). (२) पवित्र अक्षर ओम् (The Sacred sylla-ble Om). (३) मेरी इच्छा पूर्ण हो रही है (My will is being done). (४) प्रणव-प्रभाव व आत्म-साक्षात्कार (Syllable Om and Self-realization) (५) आत्मानुभव का मार्ग (The way to the Realizion of Self). (६) आत्मानुभव पर साधारण वार्तालाप (Infomel Talks on Self-realization). (७) प्रश्न और उत्तर (Questions and Answers). (८) क्या समाज विशेष की आवश्यकता है। (Is a particular Society needed). (९) आत्मनुभव के मार्ग में कुछ बाधाएं (Some of the obstacles on the way of Realization).

इक्कीसवां भाग (१) जीवनी, परमहंस स्वामी रामतीर्थ (२) प्रस्तावना (सुरजनलाल पांडे) (३) मुखम्मसे-राम (बाबू सुरजनलाल पांडे कृत) (४) स्वामी रामतीर्थ वनस्पति).

बाईसवां भाग (१) मनुष्य का भ्रातृत्व (The Brother hood of man) (२) धर्म (Religion). (३) छिद्रान्वेषण और विश्वव्यापी प्रेम (Criticism and Universal Love). (४) राम चरित्र नं० १. (५) राम चरित्र नं० २।

तेईसवां भागः — (१) राम चरित्र नं० २ अवशिष्ठ भाग

(२) यज्ञ का भावार्थ (The Spirit of Yajna). (३) एकता (४) शान्ति का उपाय (५) भारतवर्ष की प्राचीन अध्यात्मता (The ancient Spirituality of India). (६) सभ्य संसार पर भारतवर्ष का अध्यात्म-ऋण (The Civilized world's spiritual debt to India). (५) कुछ फुटकर कविता (युवा संन्यासी) ।

चौबीसवां भागः—(जो जनवरी १६२४ तक निकलेगा) (१) आरण्यक संवाद नं० १ से १२ तक जो अंग्रेज़ी जिल्द दूसरी के अन्त में दर्ज है (Forest Talks no I to XII) (२) पत्र मंजूषा ।

(२) राम पत्र ।

(अर्थात् ग्रन्थावली भाग १७ वां १८ वां)

जो लोग ग्रन्थावली के सब खण्ड नहीं मंगवा सकते, वह इसी पुस्तक को अवश्य मंगा कर देखें। इस के पढ़ने से पता चलेगा कि श्री स्वामी जी महाराज को बचपन से ही अपने पथदर्शक (गुरु जी) में कितनी असीम श्रद्धा और अगाध भक्ति थी। स्वामी जी की छात्र अवस्था के पत्र वर्तमान छात्रों के लिये विशेष उपयोगी हैं।

इन पत्रों के अतिरिक्त जो कुछ इस पुस्तक में और दर्ज हैं उसे १७, १८ वें भाग की सूची में ऊपर देखो। छपाई उत्तम, तीन चित्रों से सुसज्जित।

मूल्य साधारण संस्करण बिना जिल्द १)
विशेष संस्करण सजिल्द १।॥)

(३) राम वर्षा।

(अर्थात् ग्रन्थावली के भाग ७, ८, ९)

भजन के प्रेमियों के लिये राम भगवान् की नोटबुकों में पाये हुए जो भजन नौ अध्यायों में विभक्त और ग्रन्थावली के तीन भागों में छपे थे, उन्हें एक जिल्द में कर दिया गया है।

इन (भजनों) का प्रत्येक शब्द अलौकिक शक्ति और इन के पाठ तथा श्रवण करने से निज स्वरूप का श्रवण मनन और निदिध्यासन भली प्रकार हो जाता है। जो इन्हें पढ़े वा सुनेगा वह अपने अनुभव से आप ही साक्षी देगा।

मूल्य सम्पूर्ण राम वर्षा सजिल्द २)

ब्रह्मलीन श्री स्वामी रामतीर्थ जी के पट्ट शिष्य श्रीमान् आर एस. नारायण स्वामी द्वारा व्याख्या की हुई।

(४) श्रीमद्भगवद्गीता।

प्रथम भागः—अध्याय ६ पृष्ठ संख्या ८३२।

मूल्यः– साधारण संस्करण २), विशेष संस्करण ३)रु०

यूं तो आज कल श्रीमद्भगवद्गीता की कितनी ही व्याख्या प्रकाशित हो चुकी हैं, परन्तु जिस कारण यह व्याख्या अति उत्तम गिनी जाती है, उसे प्रतिष्ठित पत्रों से ही आप सुन लीजियेः—

सरस्वती का मत है कि, "स्वामी जी ने इस गीता-संस्करण को अनेक प्रकार से अलंकृत करने की चेष्टा की है। पहले मूल, उसके बाद अन्वयांकानुसार प्रत्येक श्लोक के प्रत्येक शब्द का अर्थ दिया गया है। उसके बाद अन्वयार्थ और व्याख्या है। इसके सिवा जगह २ पर टिप्पणियां दी गई हैं जो बड़े महत्व की हैं। बीच २ में जहां मूल का विषयान्तर होता दिखाई पड़ा है, वहां सम्बन्धिनी व्याख्या लिख कर विषय का मेल मिला दिया गया है। स्वामी जी ने एक बात

और भी की है। आप ने प्रत्येक अध्याय के अन्त में उस अध्याय का संक्षिप्त सार भी लिख दिया है। इस से साधारण लिखे पढ़े लोगों का बहुत हित साधन हुआ है। मतलब यह है कि क्या बहुज्ञ और क्या अल्पज्ञ दोनों के संतोष का साधन स्वामी जी के उस संस्करण में विद्यमान है। गीता का सरलार्थ व्यक्त करने में आपने कसर नहीं उठा रक्खी।"

अभ्युदय कहता है:- "हमने गीता की हिन्दी में अनेक व्याख्याएं देखी हैं, परन्तु श्रीनारायण स्वामी की व्याख्या के समान सुन्दर, सरल और विद्वत्तापूर्ण दूसरी व्याख्या के पढ़ने का सौभाग्य हमें नहीं प्राप्त हुआ है। स्वामी जी ने गीता की व्याख्या किसी साम्प्रदायिक सिद्धान्त की पुष्टि अथवा अपने मत की विशेषता प्रतिपादित करने की दृष्टि से नहीं की है। आप का एक मात्र उद्देश्य यही रहा है कि गीता में श्रीकृष्ण भगवान् ने जो कुछ उपदेश दिया है उसके उत्कृष्ट भाव को पाठक समझ सकें"।

अवधवासी लिखता है:—"छपाई, कटाई, कागज आदि सभी कुछ बहुत सुन्दर है। आकार मंझोला। पृष्ठ संख्या ८३२, प्रस्तावना बड़ी ही पांडित्यपूर्ण और मार्मिक है जिस में प्रसंगवश अवतार, सिद्धि आदि गूढ़ विषयों का अत्यन्त रोचक, प्रौढ़ और विश्वासोत्पादक वर्णन हुआ है, कर्म अकर्म का विवेचन, जो गीता का बड़ा कठिन विषय है, ऐसी सुन्दरता से किया गया है कि शास्त्रज्ञ और साधारण पाठक दोनों ही लाभ उठा सकते हैं। सारांश यह कि शास्त्र दृष्टि से यह ग्रन्थ हिन्दी संसार का बेजोड़ रत्न है। शांकर भाष्य, लोकमान्य तिलक कृत गीता रहस्य, अथवा ज्ञानेश्वरी टीका हिन्दी की अपनी वस्तुएँ नहीं हैं। ग्रन्थ सर्वथा आदरणीय और संग्रह के योग्य हुआ है। गीता को युक्ति पूर्वक समझाने के लिये यह अपूर्व साधन श्री स्वामी जी ने प्रस्तुत कर दिया है"।

प्रेक्टिकल मेडिसिन (दिल्ही) का मत:—"अन्तिम व्याख्या ने जिसको अति विद्वान् श्रीमान् बाल गंगाधर तिलक ने गीता रहस्य नाम से प्रकाशित किया है, हमारे चित्त में बड़ा प्रभाव डाला था, परन्तु श्रीमान् आर० एस० नारायण स्वामी की गीता की व्याख्या ने इस स्थान को छीन लिया है। इस पुस्तक ने हमें और हमारे मित्रों को इतना मोहित कर लिया है कि हमने उसे अपने नित्य प्रातः स्मरण की पाठ पुस्तकों में सम्मिलित कर दिया है"।

चित्रमय जगत पूना का मत:—हिन्दी में गीता का संस्करण अपने ढंग का एक ही निकला है। क्योंकि अभी इस प्रथम भाग में केवल ६ अध्याय ही आसके हैं, और उनकी व्याख्या इतने बड़े ग्रन्थ में हुई है, अर्थात् स्वामी जी ने इसे

कितनी ही विशेषताओं से युक्त किया है । भूमिका, प्रस्तावना, गीतारहस्य, श्लोकानुक्रमणिका, पूर्ववृत्तान्त आदि के बाद मूल गीता का शब्दार्थ और व्याख्या तथा टिप्पणी लिखी गई है ।—अर्थात् इन सब अलंकारों के सिवाय स्वामी जी ने स्थान २ पर विविध महत्वपूर्ण फुट नोट देकर पुस्तक को सर्वांग सम्पन्न ही बना दिया है । साथ ही जहां मूल का विषयान्तर होता दिखाई दिया, वहां तत्सम्बंधिनी व्याख्या देकर वर्णन को श्रृंखला बद्ध कर दिया है । इसी प्रकार प्रत्येक अध्याय के अन्त में उस का सार देकर स्वामी जी ने इसे अल्पज्ञ और बहुज्ञ सब के समझने योग्य बना दिया है । गीता का सरलार्थ तो वैसे ही समझ में आ सकता है; किंतु जिन गूढाशयों को प्रकट करने के उद्देश्य से यह टीका लिखी गई है, वह युगान्तर प्रस्थापक ही कहा जा सकता है। सौभाग्य से जब इन पंक्तियों के लेखक को खुद स्वामी जी के मुख से ही इस व्याख्या के समझने का सुअवसर प्राप्त हुआ और उस ने जो कुछ सुना, उस पर से उसे विश्वास हो गया कि सचमुच में यदि भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र के कथन को किसी ने पूरी तरह व्यक्त किया है, तो वह इस गीता द्वारा केवल स्वामी जी ने ही किया है। ऐसी कोई बात नहीं जो इस व्याख्या में देखने को न मिलती हो । सारांश; साम्प्रदायिक भेद भावों से अलग रहते हुए स्वामी जी ने इस गीता ग्रंथ को लिखकर देश का बड़ा उपकार किया है । हमारे पास वे शब्द ही नहीं कि जिन के द्वारा हम स्वामी जी को धन्यवाद दें । हम प्रत्येक जिज्ञासु से इस पुस्तक के पढ़ने का अनुरोध करते हुए स्वामी जी से भी सविनय प्रार्थना करते हैं कि इसी प्रकार वे शेष १२ अध्यायों की व्याख्या भी प्रकाशित करने की कृपा करें ।

अन्य प्रकाशकों के ग्रन्थ ।

(१) अमृत की कुंजी ।

(वा ज्ञान कहानी) बाबू बेनीप्रसाद एम. ए. एल. द्वारा रचित मूल्य प्रति कापा–)

(२) साधन संग्रह ।

यह पुस्तक भक्तप्रवर श्री पण्डित भवानीशंकर जी के उपदेश के आधार पर लिखी गई है। इस के प्रकरण ये हैं। १ धर्म, २ कर्म, ३ कर्मयोग ४ अभ्यासयोग। ५ ज्ञानयोग और ६ भक्तियोग।

इस पर पटने का सर्चलाइट लिखता है:—"हिंदू धर्म का उदार भाव जैसा पुस्तक में दर्शाया गया है. वह आज कल अधिकांश लोगों को ज्ञात नहीं है, अतएव हिन्दू धर्म की उन्नति के लिये उस का विशेष प्रचार होना चाहिये। भक्ति का विषय, उस की साधना और परिपक्वता बड़ी सुन्दरता से विस्तार रूप में वर्णन की गई है और यह अध्याय विषयानुसार परम मनोहर और उज्ज्वल है। पुस्तक वर्तमान समय के उपयोगी है"।

आकार डेमी ८ पेजी, दोनों भागों के पृष्ठ की संख्या लगभग ६५०, मूल्य दोनों भागों का २॥), प्रत्येक भाग का १॥) रु०

لیگ سے ملنے والی اردو پستکیں

۱ کلیات رام یا خمخانۂ رام جلد اول - اوسمین سوامی رام کی اردو تحریرات جو رسالہ الف مین نکلی تہین انکا مجموعہ ہے - قیمت - مجلد قسم اعلیٰ ۱ روپیہ ۸ آنہ - قسم ادنیٰ غیر جلد ۱ روپیہ —

۲ رام پتر یا خطوط رام - اسمین سوامی رام کی قلبی حالت کو دکہلانے والے ان خطوط کا مجموعہ ہے جو سوامی جی ممدوح نے اپنی طالب علمی کی حالت مین اپنے گوروجی کو لکہے تہے - قیمت مجلد و قسم اعلیٰ ۱۲ آنہ اور غیر جلد قسم ادنیٰ ۸ آنہ —

۳ رام برشا جلد اول - سوامی جی کی قلم سے بہنے ہوئے بہجنون کا مجموعہ - قیمت مجلد ۱۲ آنہ —

۴ ویدانو وچن یعنی ویدون کا کلام - اسمین ساری اپنشدون کی شرح نئے ڈھنگ سے مضمون وار درج ہے - مرتبہ از باوا نگینہ سنگہ ویدی - قیمت مجلد و قسم اعلیٰ ۱ روپیہ ۸ آنہ قیمت غیر جلد ادنی ۱ روپیہ —

رام کی پتن فوٹو قیمت ۸ آنہ —

رام کی تصویرین قیمت فی کاپی ایک آنہ دس کاپی ۸ آنہ —

دیگر پبلیشرز کی کتب

۵ سبہتا پریورتن - یہ اردو مین نئے ڈھنگ و دھرم کی بڑی دلچسپ تصنیف ہے قیمت فی کاپی ۴ آنہ —

۶ نور زندگی - ویدانت کی سلیس و عام فہم کتاب مرتبہ پنڈت نرمل چندر جی - قیمت ایک روپیہ —

ہندی اور انگریزی کتابون کی فہرست ہندی اور انگریزی حروف مین دی گئی ہین- اُسے وہان دیکہئے —